www.ghoonghatkibagawat | www.ghoonghatkibagawat | ghoonghatkibagawat37@gmail.com

घूँघट की बगावत

UP/HIN/1999/1282

प्रत्येक रविवार को प्रकाशित

हिन्दी साप्ताहिक समाचार पत्र

वर्ष : 25 अंक : 13 | गोरखपुर, 21 सितम्बर 2025 रविवार | पृष्ठ : 6 | मूल्य : 2

प्रदूषण को लेकर सु.को. सख्त

तीन हफ्तों के भीतर वायु प्रदूषण को रोकने के उपाय पेश करें

नई दिल्ली । सुप्रीम कोर्ट ने सीएक्यूएम, सीपीसीबी और राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों को निर्देश दिया कि वे सर्दियों के मौसम की शुरूआत से पहले, जब प्रदूषण का स्तर बढ़ जाता है, तीन हफ्तों के भीतर वायु प्रदूषण को रोकने के उपाय पेश करें। भारत के मुख्य न्यायाधीश (सीजे-आई) बी आर गवई और न्यायमूर्ति के विनोद चंद्रन की पीठ ने प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों में रिक्तियों को लेकर राज्यों की खिंचाई की और उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान और पंजाब जैसे राज्यों को तीन महीने के भीतर इन पदों को भरने को कहा। पीठ ने वायु गुणवत्ता प्रबंधन आयोग (सीएक्यूएम) और केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) को भी इसी तरह के निर्देश दिए। हालाँकि, इसने राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों, सीएक्यूएम और सीपीसीबी में पदोन्नति के पदों को भरने के लिए छह महीने का समय दिया। सीएक्यूएम केंद्र द्वारा गठित एक वैधानिक निकाय है और इसका मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर) और उसके आसपास के क्षेत्रों, जिनमें पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के कुछ हिस्से शामिल हैं, में वायु गुणवत्ता का प्रबंधन और सुधार करना है। पीठ इन प्राधिकरणों में रिक्त पदों को भरने से संबंधित एक स्वतः संज्ञान याचिका पर सुनवाई कर रही थी। इस मामले की अगली सुनवाई 8 अक्टूबर को होगी। अदालत ने प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों में लंबे समय से लंबित रिक्तियों को भरने में विफल रहने के लिए राज्यों को कड़ी फटकार लगाई और कहा कि प्रदूषण के चरम मौसम में अपर्याप्त मानव संसाधन पर्यावरण संकट को और बढ़ा देते हैं।

दिल्ली सरकार ने भी सुप्रीम कोर्ट के आदेशों के अनुरूप पर्यावरण संरक्षण अधिनियम की धारा 5 के तहत पटाखों पर पूर्ण और स्थायी प्रतिबंध लागू किया है। इस प्रतिबंध के अनुसार न तो पटाखों का उत्पादन हो सकता है, न बिक्री और न ही भंडारण या उपयोग। यह कदम पर्यावरण और नागरिकों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए जरूरी था। लेकिन केवल सरकारी आदेश और अदालत के निर्देश काफी नहीं होंगे, जब तक समाज स्वयं अपनी सोच और व्यवहार में बदलाव नहीं लाता।

आतिशबाजी रहित उत्सवों की परम्परा का सूत्रपात हो

पर्यावरण संकट हमारे समय की सबसे बड़ी चुनौती बन चुका है। बढ़ता प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों की लगातार हो रही क्षति ने जीवन को असहज और असुरक्षित बना दिया है। यह संकट किसी दूर के भविष्य की चिंता नहीं है, बल्कि हमारे रोजमर्रा के जीवन को प्रभावित कर रहा है। राजधानी दिल्ली इसका सबसे जीवंत उदाहरण है, जहाँ दीपावली और अन्य त्योहारों के बाद वायु गुणवत्ता इतनी खराब हो जाती है कि सांस लेना तक मुश्किल हो जाता है। इसका एक प्रमुख कारण पटाखों का प्रयोग है। पटाखे और आतिशबाजी कुछ क्षणों के लिए उत्सव का शोर और रोशनी जरूर बिखेरते हैं, लेकिन उनके पीछे छूट जाता है जहरीला धुआं, असहनीय शोर, सांस लेने में तकलीफ और एक असंतुलित वातावरण। इस स्थिति में दिल्ली व राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में पटाखों पर अंकुश लगाने के संदर्भ में देश की शीर्ष अदालत की टिप्पणी संवेदनशील और मार्गदर्शक होने के साथ-साथ जनजागरूकता बढ़ाने वाली है। कोर्ट ने सख्त लहजे में कहा कि यदि साफ वायु राष्ट्रीय राजधानी के विशिष्ट लोगों का हक है तो यह हक शेष देश के हर व्यक्ति को भी मिलना चाहिए। दिल्ली ही नहीं, सम्पूर्ण देश में वायु प्रदूषण को नियंत्रण करना जरूरी है।

दुनिया भर के प्रदूषित देशों में भारत पांचवें नंबर पर है, दुनिया के सबसे ज्यादा प्रदूषित शहर भी हमारे ही देश में हैं, ऐसे तेरह शहर दुनिया के शीर्ष बीस प्रदूषित शहरों में शुमार हैं, इन चिन्ताजनक हालातों में हवा को जहरीला बनाने वाले पटाखे निरंकुश रूप से जलाना एक आत्मघाती कदम ही है। पटाखों के दुष्प्रभाव स्पष्ट और प्रमाणित हैं। वे वातावरण में जहरीली गैसों का उत्सर्जन करते हैं, जिससे हवा की गुणवत्ता अचानक बेहद खराब हो जाती है। दीपावली की रात पटाखों से निकलने वाला धुआं कई दिनों तक हवा में बना रहता है और सांस की तकलीफ, आंखों में जलन, हृदय रोग और दमा जैसी बीमारियों को और गंभीर कर देता है। पटाखों से होने वाला ध्वनि प्रदूषण बच्चों, बुजुर्गों और बीमार लोगों के लिए भय और असहनीय पीड़ा का कारण बनता है। पशु-पक्षियों की स्थिति भी दयनीय हो जाती है, उनके जीवन में असुरक्षा और बेचैनी घुल जाती है। यह सब जानते हुए भी आतिशबाजी को लेकर समाज में अब भी ढिलाई और परंपरा के नाम पर अनदेखी जारी रहना दुर्भाग्यपूर्ण एवं विडम्बनापूर्ण है।

दिल्ली और आसपास के क्षेत्रों में दीपावली के बाद की स्थिति किसी आपदा से कम नहीं होती। पिछले वर्ष दीपावली के दौरान दिल्ली के कई इलाकों में वायु गुणवत्ता सूचकांक यानी एक्यूआई 300 से ऊपर चला गया और ह्लबहुत खराबह्व से ह्लगंभीरह्व श्रेणी में दर्ज हुआ। यह हर साल का दोहराया जाने वाला दृश्य है और हर साल सरकार, समाज और न्यायपालिका को इसे लेकर चिंतित होना पड़ता है। सुप्रीम कोर्ट ने भी इस विकट स्थिति को गंभीरता से लिया है और हाल के वर्षों में बार-बार स्पष्ट किया है कि केवल दिल्ली ही नहीं, बल्कि पूरे देश में पटाखों पर रोक लगनी चाहिए। सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणी के आलोक में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अब चाहे दुनिया का सबसे प्रदूषित शहर बनीहाट हो या पंजाब व राजस्थान के सबसे अधिक प्रदूषित शहर हों, उन्हें भी पटाखों के नियमन का लाभ मिलना चाहिए। हाल ही में अदालत ने सरकारों को यह सुनिश्चित करने के निर्देश दिए कि पटाखों के उत्पादन, बिक्री और भंडारण पर पूर्ण रोक हो, और जो भी इन नियमों का उल्लंघन करे उसके खिलाफ कठोर कार्रवाई की जाए। अदालत का यह रुख केवल कानूनी आदेश नहीं है, बल्कि समाज को चेताने वाला संदेश भी है कि अब हमें अपने उत्सवों की परिभाषा बदलनी होगी।

दिल्ली सरकार ने भी सुप्रीम कोर्ट के आदेशों के अनुरूप पर्यावरण संरक्षण अधिनियम की धारा 5 के तहत पटाखों पर पूर्ण और स्थायी प्रतिबंध लागू किया है। इस प्रतिबंध के अनुसार न तो पटाखों का उत्पादन हो सकता है, न बिक्री और न ही भंडारण या उपयोग। यह कदम पर्यावरण और नागरिकों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए जरूरी था। लेकिन केवल सरकारी आदेश और अदालत के निर्देश काफी नहीं होंगे, जब तक समाज स्वयं अपनी सोच और व्यवहार में बदलाव नहीं लाता। परंपराओं को बदलने में समय लगता है, लेकिन जैसे लोग धीरे-धीरे प्लास्टिक के खिलाफ खड़े हुए और विकल्प तलाशने लगे, वैसे ही आतिशबाजी से मुक्त त्योहारों को भी अपनाया जा सकता है। सवाल यह है कि हम लोग क्यों नहीं सोचते कि हमारे पटाखे जलाने से श्वास रोगों से जूझते तमाम लोगों का जीना दुश्वार हो जाता है। यह एक हकीकत है कि देश के तमाम शहरों में हवा ही नहीं, पानी व मिट्टी तक में जहरीले तत्वों का समावेश हो चुका है। जो न केवल हमारी आबोहवा के लिये बल्कि हमारे शरीर के लिये भी घातक साबित हो रहा है। यही वजह है कि हाल के वर्षों में देश में श्वसन तंत्र से जुड़े रोगों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। साथ ही प्रदूषित हवा के प्रभाव में सांस संबंधी रोगों से लोगों के मरने का आंक्ड़ा भी बढ़ा है। कहीं न कहीं हमारे वातावरण में बढ़ता प्रदूषण ग्लोबल वार्मिंग बढ़ाने वाले कारकों में वृद्धि भी कर रहा है। लेकिन पटाखों से होने वाला प्रदूषण ऐसा है जो हमारे संयम के जरिये रोका जा सकता है। चिंता की बात यह है कि पटाखों के जलने से निकलने वाले कण हमारे श्वसनतंत्र को नुकसान पहुंचाने के साथ ही हमारे खून में घुल रहे हैं। जिसमें पीएम 2.5 और पीएम 10 जैसे महीन कण फेफड़ों में प्रवेश करके गंभीर रोगों को जन्म दे रहे हैं। इतना ही नहीं पटाखे जलाने के कारण जहरीली रासायनिक गैसों के रिसाव से हमारे पारिस्थितिकीय तंत्र को गंभीर क्षति पहुंच रही है। इससे ओजोन परत भी क्षतिग्रस्त हो रही है। साथ ही ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन भी हमारे वायुमंडल में जलवायु परिवर्तन के संकटों को बढ़ाने में भूमिका निभा रहा है।

त्योहार और उत्सव हमारे जीवन का हिस्सा हैं। वे सामाजिक जुड़ाव, सांस्कृतिक गौरव और सामूहिक खुशी का प्रतीक हैं। लेकिन जब खुशी मनाने का तरीका ही हमारे स्वास्थ्य और जीवन के लिए संकट बन जाए, तब उस पर गंभीर पुनर्विचार आवश्यक हो जाता है। दीपावली पर पटाखों की परंपरा समाज में गहराई तक पैठ चुकी है। लोग इसे परंपरा, रौनक और आनंद का प्रतीक मानते हैं। अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि ह्लबिना पटाखों के त्योहार अधूरा लगता है।ह्व लेकिन यह सोच आज के समय में बेहद खतरनाक साबित हो रही है। त्योहार की असली रौनक दीपों की जगमगाहट, परिवार की एकजुटता, सांस्कृतिक कार्यक्रमों और सामूहिक उत्सवों में है। संगीत, नाटक, कला और पारंपरिक दीपक किसी भी पटाखे से कहीं अधिक स्थायी आनंद दे सकते हैं। समय आ गया है कि हम यह स्वीकार करें कि आतिशबाजी अब हमारी खुशियों का हिस्सा नहीं रह सकती। खुशियों का असली मतलब है एक-दूसरे के साथ का आनंद, स्वच्छ वातावरण में खुलकर सांस लेना और समाज में शांति और प्रेम का संचार करना। अगर हम चाहते हैं कि हमारी अगली पीढ़ी सुरक्षित और स्वस्थ जीवन जी सके, तो आतिशबाजी को त्यागना ही होगा।

सरकारें अपनी नीतियों से इस दिशा में पहल कर चुकी हैं, अदालत ने भी कठोर आदेश दिए हैं, अब बारी समाज की है कि वह अपनी सोच बदले और अपने त्योहारों को पटाखों के बिना भी और अधिक रोशन और सार्थक बनाए। एक नागरिक के तौर पर हमारी जिम्मेदारी व संवेदनशीलता ही हमें इस संकट से उबार सकता है। विगत में सख्त कानून लागू करने के बावजूद नागरिकों के गैर-जिम्मेदार व्यवहार से प्रदूषण का संकट बढ़ा ही है। जब हम प्रकृति को नुकसान पहुंचाए बिना त्योहार मनाएंगे, तभी सच्चे अर्थों में हमारे उत्सव जीवनदायी और सार्थक बनेंगे। यही समय है कि हम सामूहिक रूप से एक नई परंपरा गढ़ें, आतिशबाजी रहित त्योहारों की परंपरा, ताकि आने वाली पीढ़ियां हमें दोष न दें कि हमने उनके हिस्से की स्वच्छ हवा और सुरक्षित पर्यावरण छीन लिया।

न्यायिक क्षेत्र में अधिवक्ता परिषद का योगदान विषय पर अधिवक्ताओं ने किया विचार विमर्श

सीतापुर। अधिवक्ता परिषद इकाई जनपद सीतापुर का 34वां स्थापना दिवस बार एसोसिएशन स्थित सभागार में आयोजित किया गया। जिसमें मुख्य अतिथि के रूप में अखिल भारतीय अधिवक्ता परिषद के राष्ट्रीय सदस्य आनन्द प्रकाश शुक्ल रहें, जबकि विशिष्ट अतिथि जिला शासकीय अधिवक्ता फौजदारी प्रशान्त शुक्ला, बार एसोसिएशन अध्यक्ष विजय अवस्थी रहें। कार्यक्रम की अध्यक्षता जिलाध्यक्ष विश्वनाथ दीक्षित तथा संचालन गिरीश चन्द्र मिश्र ने किया। कार्यक्रम का शुभारम्भ भारतमाता के चित्र पर दीप प्रज्जवलन व मुख्य तथा विशिष्ट अतिथियों का स्वागत कर किया गया। कार्यक्रम के विषय न्यायिक क्षेत्र में अधिवक्ता परिषद का योगदान पर उपस्थित

अधिवक्ताओं ने अपने-अपने विचार रखे। मुख्य अतिथि शुक्ल ने भी न्यायिक क्षेत्र में अधिवक्ता परिषद की महत्वपूर्ण भूमिका को विस्तार पूर्ण बताया। अन्त में जिलाध्यक्ष विश्वनाथ दीक्षित महामंत्री निर्भय सेन जायसवाल ने उपस्थित जनों का अभार जताया।

त्रैमासिक शोध पत्रिका अनुबोधन का विमोचन

गोरखपुर। दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय की कुलपति प्रो. पूनम टंडन ने गत दिनों सिरी रिसर्च फाउंडेशन, गोरखपुर की त्रैमासिक शोध पत्रिका अनुबोधन का विमोचन किया। यह जर्नल मार्च 2025 से प्रिंट माध्यम में प्रकाशित हो रही है और इसके संपादकीय कार्य गोरखपुर विश्वविद्यालय के आचार्य एवं अध्येताओं द्वारा संचालित किए जा रहे हैं। कुलपति प्रो. पूनम टंडन ने मार्च और जून अंक का विमोचन करते हुए पत्रिका की सामग्री की सराहना करते हुए कहा कि यह गोरखपुर परिक्षेत्र के शोध प्रकाशन गतिविधियों को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। उन्होंने संपादकीय टीम को सुझाव दिया कि जर्नल और उसके आलेखों को डी.ओ.आई. प्राप्त कराया जाए। डी.ओ.आई. से शोध लेखों को वैश्विक स्तर पर मान्यता और उपलब्धता सुनिश्चित होती है। महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ शोधपीठ के उपनिदेशक एवं संपादकीय समिति के वरिष्ठ सदस्य डॉ. कुशलनाथ मिश्र ने बताया कि पत्रिका के लिए डी.ओ.आई. प्रक्रिया जल्द ही प्रारंभ की जाएगी। संपादक डॉ. सुनील कुमार ने कहा कि शोध पत्रिका का ऑनलाइन संस्करण भी शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

बार-बार दोहराई गई त्रासदी, बाढ़ प्रबंधन क्यों है अधूरा सपना?

हरियाणा और उत्तर भारत के कई राज्य बार-बार बाढ़ की विभीषिका झेलते हैं, लेकिन हर बार नुकसान झेलने के बावजूद स्थायी समाधान की दिशा में ठोस पहल नजर नहीं आती। 2023 की बाढ़ के बाद भी कराड़ों रुपये खर्च होने के बावजूद नदियों की सफाई, नालों की निकासी और जल प्रबंधन की योजनाएं अधूरी पड़ी रहीं। नतीजा यह कि 2025 में एक बार फिर लाखों किसान अपनी मेहनत की फसल डूबते देख मजबूर हुए। सवाल यह है कि जब बाढ़ का खतरा बार-बार दस्तक देता है तो हमारी नीतियां क्यों स्थायी हल नहीं तलाश पातीं?

हरियाणा में 2025 की बाढ़ कोई अप्रत्याशित प्राकृतिक आपदा नहीं थी। यह वही त्रासदी है, जिसकी पुनरावृत्ति राज्य 1978, 1988, 1995, 2010 और हाल ही में 2023 में झेल चुका है। आंकड़े चौंकाने वाले हैं। केवल पिछले दो वर्षों में 657 करोड़ रुपये बाढ़ प्रबंधन पर खर्च किए गए, फिर भी इक्कीस जिलों के सैकड़ों गांव पानी में डूबे रहे, साढ़े चार लाख से अधिक किसानों की छब्बीस लाख एकड़ से ज्यादा फसल बर्बाद हो गई, हजारों परिवार बेघर हो गए और तेरह लोगों की जान चली गई। हर बार यह सवाल उठता है कि आखिर सरकारें और तंत्र क्यों एक ही गलती बार-बार दोहराते हैं और पिछले अनुभवों से सबक क्यों नहीं लेते। बाढ़ कोई अचानक आई विपत्ति नहीं है, बल्कि एक अनुमानित और बार-बार आने वाला खतरा है। नदियों का उफान, बरसाती नालों का रुख बदलना और निकासी व्यवस्था का ध्वस्त होना ऐसी समस्याएं हैं, जो पहले से ज्ञात हैं और जिनका समाधान वर्षों से टलता आ रहा है। 2023 की बाढ़ के बाद सरकार ने बड़े दावे किए थे कि स्थायी समाधान के लिए ड्रेनेज सुधार, तटबंध मजबूत करने और नालों की गहराई बढ़ाने का काम प्राथमिकता पर होगा। लेकिन जमीनी हकीकत यह है कि अधिकांश योजनाएं अधूरी रहीं और जो शुरू हुईं वे भ्रष्टाचार या लापरवाही की भेंट चढ़ गईं। इस अव्यवस्था का सबसे गहरा असर किसानों पर पड़ा है। खरीफ सीजन की धान, बाजरा और गन्ने जैसी फसलें पूरी तरह चौपट हो गईं। औसतन एक किसान को प्रति एकड़ पंद्रह से बीस हजार रुपये का नुकसान हुआ। इसके साथ ही पशुधन की मौतें, घरों के ढहने और बुनियादी ढांचे के टूटने से हालात और बिगड़ गए। उद्योग जगत भी इससे अछूता नहीं रहा। अंबाला और यमुनानगर जैसे औद्योगिक क्षेत्रों में कारखानों और गोदामों में पानी भर गया, जिससे करोड़ों का नुकसान हुआ और हजारों मजदूर रोजगार से वंचित हो गए।

इस स्थिति के पीछे प्रशासनिक लापरवाही सबसे बड़ा कारण है। हरियाणा सरकार के पास न तो गांव-स्तरीय निकासी योजना है और न ही कोई स्थायी रणनीति। मानसून से पहले नालों की सफाई करने की बजाय दिखावटी काम किए जाते हैं। कई जगह ड्रेनेज सिस्टम सालों से जाम पड़े हैं। करोड़ों रुपये खर्च होने के बावजूद नदियों और नालों का प्रवाह जस का तस है। इसके अलावा सिंचाई विभाग, आपदा प्रबंधन विभाग और स्थानीय निकायों के बीच तालमेल का अभाव स्थिति को और गंभीर बना देता है। हर विभाग अपने-अपने दायरे में काम करता है, लेकिन समन्वय के अभाव में कोई ठोस परिणाम सामने नहीं आता। जल प्रबंधन विशेषज्ञों का मानना है कि बाढ़ पर काबू पाने के लिए व्यापक और दीर्घकालिक रणनीति बनाना अनिवार्य है। डॉ. शिव सिंह राठ जैसे विशेषज्ञ स्पष्ट कहते हैं कि नदियों की नियमित ड्रेजिंग, बरसाती नालों का वैज्ञानिक पुनर्निर्माण और गांव स्तर तक जल निकासी प्रणाली का निर्माण ही स्थायी समाधान दे सकता है। पर्यावरणविदों का भी यही तर्क है कि नदियों के तटों पर अनियंत्रित अतिक्रमण और अवैध निर्माण बाढ़ की विभीषिका को और बढ़ा देते हैं। जब तक नदियों को उनका प्राकृतिक बहाव नहीं लौटाया जाएगा, तब तक यह त्रासदी बार-बार लौटकर आती रहेगी। किसानों और आम लोगों की पीड़ा आंकड़ों से कहीं ज्यादा गहरी है। हजारों परिवार महीनों तक राहत शिविरों में रहने को मजबूर हो जाते हैं। बच्चों की पढ़ाई बाधित होती है, महिलाओं और बुजुर्गों की सेहत बिगड़ती है और मजदूर वर्ग बेरोजगारी का शिकार हो जाता है। इस बार भी छह हजार से ज्यादा गांव पानी में डूबे और करीब अट्ठाईस सौ लोग विस्थापित हुए। कल्पना कीजिए, जब इतनी बड़ी संख्या में लोग अपने घर-बार से उजड़ते हैं, तो उनकी मानसिक और सामाजिक स्थिति किस हद तक डगमगा जाती होगी। सबसे बड़ा सवाल यही है कि जब 2010 और 2023 जैसी बड़ी बाढ़ें आ चुकी थीं, तो 2025 में वही गलती दोहराने का औचित्य क्या था। असल कारण साफ हैं। राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी ने इस मुद्दे को कभी चुनावी एजेंडा नहीं बनने दिया। सरकारों का दृष्टिकोण हमेशा अल्पकालिक रहा। हर साल राहत और पुनर्वास पर खर्च होता रहा, लेकिन स्थायी संरचनाओं पर निवेश नहीं हुआ। इसके साथ ही भ्रष्टाचार और संसाधनों की बबार्दी ने हालात और बदतर कर दिए। अगर सचमुच स्थायी समाधान चाहिए तो राज्य को ठोस कदम उठाने होंगे। एक स्वतंत्र नदी प्रबंधन आयोग का गठन करना होगा, जो नदियों और नालों की सफाई, तटबंध निर्माण और निगरानी जैसे काम नियमित रूप से करे। हर पंचायत स्तर पर ड्रेनेज योजना तैयार की जानी चाहिए और उसका कड़ाई से पालन सुनिश्चित होना चाहिए। तकनीक का इस्तेमाल करते हुए सैटेलाइट मैपिंग, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधारित पूर्वानुमान और रीयल-टाइम मॉनिटरिंग सिस्टम लागू करना होगा। स्थानीय लोगों की भागीदारी से नालों की सफाई और तटबंधों की देखरेख सुनिश्चित करनी होगी। और सबसे महत्वपूर्ण यह कि राहत पैकेज पर अरबों रुपये खर्च करने के बजाय स्थायी ढांचे और संरचनाओं पर निवेश किया जाना चाहिए।

दरअसल बाढ़ केवल प्राकृतिक आपदा नहीं है, यह मानवीय लापरवाही और नीतिगत असफलता का परिणाम भी है। हरियाणा ने नौ बार बाढ़ झेली, लेकिन हर बार केवल आंकड़े गिनने और वादे करने तक ही बात सीमित रही।

किसानों की पीड़ा, उद्योगों का नुकसान और विस्थापित परिवारों की त्रासदी हमें यह बताती है कि अब आधे-अधूरे उपायों से काम नहीं चलेगा। सरकार और समाज को मिलकर व्यापक, वैज्ञानिक और दीर्घकालिक बाढ़ प्रबंधन नीति अपनानी ही होगी, वरना 2027 या 2030 में फिर यही खबर पढ़नी पड़ेगी—ह्लएक और बाढ़, एक और नुकसान और एक और अधूरा वादा।ह्व

– डॉ. सत्यवान सौरभ,

विश्व हिन्दी दिवस : समाचार पत्रों से गायब होती स्थानीय भाषा

19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुई जनगणना में महज एक प्रतिशत लोग साक्षर पाए गए थे, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि उससे पहले भाषा, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि का ज्ञान हमारे पास नहीं था। वह था देश की बोलियों में, संस्कृत में, उससे भी पहले प्राकृत या पालि में, जिसे सीमित लोग समझते थे। फिर अमीर खुसरो के समय आई हिंदी` हिंदी साहित्य का भक्ति काल 1375 ई से 1700 ई तक माना जाता है। यह हिंदी साहित्य का श्रेष्ठ युग है। समस्त हिंदी, उसकी लोक बोलियों में साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएं इस युग में प्राप्त होती हैं।

आज जिस हिंदी की स्थापना के लिए पूरे देश में पखवाड़ा मनाया जाता है, उसकी सबसे बड़ी दुविधा है। मानक हिंदी, यानी संस्कृतनिष्ठ हिंदी। सनद रहे, संस्कृत का स्वभाव शास्त्रीय है और दरबारी, जबकि हिंदी का स्वभाव लोक है और विद्रोही । ऐसा नहीं है कि आम लोगों की हिंदी में संस्कृत से परहेज है। उसमें संस्कृत से यथावत लिए गए तत्सम शब्द भी हैं, तो अपभ्रंश हुए तद्भव शब्द भी, जैसे अग्नि से आग उष्ट से ऊंट आदि । इसमें देशज शब्द भी रहे हैं। आज भी जब प्रतिरोध की बात होगी, लोक बोली और उससे जुड़ी हिंदी ही काम आएगी। कई बार लगता है कि सरकारी हिंदी का प्रयास भी वही है, जो अंग्रेजों का था। विशुद्ध हिंदी बहुत ही कम माध्यमों में है।

यह चिंता का विषय है कि समाचार पत्रों ने अपने स्थानीय संस्करण निकालने तो शुरू किए, लेकिन उनसे स्थानीय भाषा गायब हो गई। जैसे- कुछ दशक पहले कानपुर के अखबारों में गुम्मा व चुटैल जैसे शब्द होते थे, बिहार में ट्रेन - बस से लेकर जहाज तक के प्रारंभ होने के समय को 'खुलने का समय कहा जाता था। महाराष्ट्र के अखबारों में जाहिरा, माहेती जैसे शब्द होते थे। पंजाब- हरियाणा हिमाचल के हिंदी मीडिया में स्थानीयता का पुट पर्याप्त होता था। अब सभी जगह एक जैसे शब्द आ रहे हैं। लगता है, हिंदी

की भाषा समृद्धि में व्यवधान सा पैदा हो गया है। तिस पर सरकारी महकमे हिंदी के मानक रूप को तैयार करने में संस्कृतनिष्ठ हिंदी ला रहे हैं। असल में, वे जिसे मानक हिंदी कहते हैं, वह सीसे के लेटर प्रेस की हिंदी थी, जिसमें कई मात्राओं, आधे शब्दों के फॉन्ट नहीं होते थे। आज कंप्यूटर की प्रकाशन दुनिया में लेड की प्रकाशन है। प्रेस के फॉन्ट की बात करने वाले असल में हिंदी को थाम रहे हैं।

हिंदी में बोली और भाषा का द्वंद्व शिक्षा के प्रसार और स्कूल जाने वाले बच्चों की बढ़ती संख्या व रोजगार के लिए होने वाले पलायन ने बढ़ाया है।

बच्चों के साथ दिक्कतों का दौर स्कूल जाते ही शुरू हो जाता है। घर पर वह सुनता है मालवी, निमाड़ी, मिजो, मिशिंग, खासी, गढ़वाली, राजस्थानी, बुंदेली या भीली, गोंडी, धुरबी या ऐसी ही 'अपनी' बोली-भाषा। मगर स्कूल में किताबें खड़ी हिंदी या अंग्रेजी या राज्य की भाषा में होती हैं, और उसे तभी बता दिया जाता है कि यदि असल में पढ़ाई कर नौकरी पानी है, तो अंग्रेजी ही एकमात्र जरिया है। बच्चा इसी दुविधा में बचपन बिता देता है कि 'पहले अध्यापक' मां-पिता को सही कहूं या स्कूल की पुस्तकों की भाषा को, जो उसे 'सभ्य' बनाने का वायदा करती है। जाहिर है, इस उलझन में पले-बढ़े लोग जिस दफ्तर में जाएंगे, वहां भी राजभाषा व लोकभाषा की हिंदी में उलझे रहेंगे। असल में, कोई भी भाषा 'बहता पानी निर्मला' होती है, उसमें समय के साथ शब्दों का आना-जाना, लेन-देन, नए प्रयोग आदि लगे रहते हैं। यदि हिंदी को वास्तव में एक जीवंत भाषा बनाकर रखना है, तो शब्दों का यह लेन-देन पहले अपनी बोलियों व फिर भाषाओं से हो, वरना हिंदी नारे, सम्मेलन, बैनर, उत्सव की भाषा ही बनी रहेगी। जान लें, हिंदी का मौजूदा मानक रूप बुंदेली, ब्रज, राजस्थानी आदि बोलियों से उभरा है और इसकी श्री वृद्धि के लिए इन बोलियों को ही हिंदी की पालकी संभालनी होगी।

स्वास्थ्य सेवाओं तक समावेशी पहुंच चुनौती

राष्ट्र की वास्तविक संपत्ति वहां की जनता होती है और जनता की वास्तविक ताकत उसके स्वास्थ्य से आंकी जाती है परंतु जब स्वास्थ्य सुविधाएं अमीर-गरीब, शहर-गांव, पुरुष-महिला, विकलांग-समर्थ और ग्रामीण-शहरी के बीच असमान रूप से बंटी हों तो समाज में असमानता की खाई और गहरी होती जाती है। आजादी के 75 वर्षोपरान्त भी भारत सहित दुनिया के कई देशों में स्वास्थ्य सेवाओं तक समावेशी पहुंच चुनौती बनी हुई है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लूएचओ) ने बार-बार कहा है कि किसी भी राष्ट्र को न्यूनतम 6प्रतिशत जीडीपी स्वास्थ्य पर खर्च करना चाहिए लेकिन भारत आज भी 3.3 प्रतिशत के आसपास अटका हुआ है। यह अंतर आंकड़ों का नहीं बल्कि इंसानी जीवन-मृत्यु का है। परणिामस्वरूप लाखों परिवार प्रतिवर्ष इलाज के खर्च से कर्ज में डूब जाते हैं और गरीबी की रेखा के नीचे सरक जाते हैं। विश्व बैंक की मानी जाए तो भारत में प्रति हजार आबादी पर केवल 0.8 डॉक्टर हैं जबकि वैश्विक औसत 1.8 है। अर्थात् हमारे नागरिकों के हिस्से में बीमारी और अभाव कहीं अधिक हैं। स्थितियां तो यहां तक पहुंच चुकी हैं कि भारत की स्वास्थ्य चुनौतियां केवल डॉक्टरों और अस्पतालों की कमी तक सीमित नहीं हैं। यह समस्या नजरिये की भी है। जब तक स्वास्थ्य को राजनीतिक विमर्श और चुनावी मुद्दों में प्राथमिकता नहीं दी जाएगी तब तक वास्तविक सुधार सफेद हाथी साबित होगा। चुनावों में सड़क, बिजली, पानी,जाति और धर्म पर तो विमर्श किये जाते हैं, स्वास्थ्य जैसे बुनियादी मुद्दे को शायद ही कभी केंद्र में रखा जाता है। जब तक आम जनता इसे अपना अधिकार मान कर इसकी मांग नहीं करेगी, तब तक व्यवस्था में निर्णायक परिवर्तन मुश्किल ही रहेगा। कहना न होगा कि समावेशी स्वास्थ्य व्यवस्था ही वह आधार है जिस पर न केवल एक मजबूत समाज बल्कि एक सशक्त और न्यायपूर्ण भारत का निर्माण संभव है।

कानून प्रवर्तन एजेंसियों की सुस्ती और मार्ग दुर्घटनाएं

भारत की राजधानी दिल्ली तेजी से फैलती और बढ़ती हुई है। सड़कें का विकास कम नहीं हुआ है। मगर दुर्भाग्य जो ये प्रगति के साथ दुर्घटनाओं व मौत की वजह भी बन गई हैं। 14 सितंबर 2025 को दिल्ली में एक बार फिर दिल दहला देने वाली घटना घटी। एक लग्जरी बीएमडब्ल्यू कार ने एक बाइक को जोरदार टक्कर मार दी। इस हादसे में वित्त मंत्रालय के एक अधिकारी की मौके पर ही मौत हो गई, जबकि उनकी पत्नी गंभीर रूप से घायल हो गईं। पुलिस ने दोषपूर्ण हत्या के तहत मामला दर्ज कर लिया है। हमें देश के अलग अलग शहरों से आए दिन ऐसी घटनाओं की खबर मिलती है जो भारत की सड़क सुरक्षा व्यवस्था की पोल खोल कर रख देती हैं। हर साल लाखों दुर्घटनाएं हो रही हैं, जिनमें से अधिकांश रोकी जा सकती है। लेकिन कुछ नहीं हो पाता। क्यों? मुख्य कारण है आपातकालीन सेवाओं की घोर कमी, जनता द्वारा यातायात नियमों की अवहेलना करना और कानून प्रवर्तन एजेंसियों की सुस्ती। सबसे पहले, हालिया दुर्घटना को समझें। अधिकारी नवजोत सिंह की मौत ने सभी को झकझोर दिया। पुलिस जांच से पता चला कि कार की रफ्तार निर्धारित गति सीमा से काफी अधिक थी। लेकिन हादसे के बाद जो सबसे बड़ी लापरवाही सामने आई, वह थी प्राथमिक चिकित्सा सहायता की अनुपस्थिति। दुर्भाग्यवश, दिल्ली जैसे महानगर में भी एम्बुलेंस पहुंचने में 20-30 मिनट लग जाते हैं। यदि 'गोल्डन ऑवर' यानी हादसे के पहले घंटे में उचित उपचार मिल जाता, तो शायद नवजोत की जान बच सकती थी। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, भारत में सड़क दुर्घटनाओं में 50 प्रतिशत मौतें प्री-हॉस्पिटल चरण में ही हो जाती हैं, क्योंकि भारत में आपातकालीन सेवाएं अपर्याप्त हैं।

एनसीआरबी की 2021 की रिपोर्ट पर गौर करें तो यह पाते हैं कि देश में 1,55,622 सड़क मौतें हुईं, जिनमें से 69,240 दोपहिया वाहनों से जुड़ी थीं। वहीं, सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्रालय के अनुसार, 2022 में 4,64,910 दुर्घटनाओं में 1,47,913 मौतें हुईं। समस्या यह है कि भारत में एम्बुलेंस सेवाएं, जैसे 108 या 102, अक्सर ओवरलोडेड होती हैं। ग्रामीण और राजमार्गीय इलाकों में तो स्थिति और खराब है। यहां एम्बुलेंस पहुंचने में औसतन 45 मिनट से राष्ट्रीय राजमार्गों पर दुर्घटना स्थल से ट्रॉमा सेंटर तक पहुंचने में देरी से 40 प्रतिशत मौतें बढ़ जाती हैं। दिल्ली में, जहां वाहनों की संख्या 1 करोड़ से अधिक है, ट्रैफिक जाम एम्बुलेंस को रोक देता है।

फोरेंसिक विशेषज्ञों की राय है कि यदि प्री-हॉस्पिटल इमरजेंसी केयर मजबूत होती, तो 30-50 प्रतिशत जानें बच सकतीं है लेकिन सरकार की '5ई' रणनीति–इंजीनियरिंग, एजुकेशन, एनफोर्समेंट, इमरजेंसी केयर, में इमरजेंसी केयर पर निवेश न्यूनतम है। नतीजा? हर दिन 405 जानों का राष्ट्रीय संकट है, जो सभी को बेतरतीब विकास पर सोचने को मजबूर करता है। फिर मसला जनता द्वारा यातायात नियमों की अवहेलना का है। इसका एक बड़ा कारण है 'चलता है' वाली मानसिकता। प्लेटफॉर्म्स पर चचाओं से साफ है कि लोग नियमों को ह्यसजावटीह्व मानते हैं। ओवरस्पीडिंग, बिना हेलमेट या सीटबेल्ट के ड्राइविंग, गलत लेन तोड़ना, ये आम स्वभाव हैं। क्यों? पहली बात, जागरूकता की कमी है। स्कूलों में ट्रैफिक नियमों की शिक्षा पर्याप्त मात्रा में नहीं दी जाती, नतीजतन बच्चे बड़े होकर भी नियमों को महत्व नहीं देते। दूसरा कारण, जनसंख्या घनत्व का है। 1.3 अरब आबादी वाले देश में सड़कें ओवरलोड हैं, लोग सोचते हैं, एक-दो नियम तोड़ लूंगा, क्या फर्क पड़ेगा? तीसरा, सामाजिक दबाव, यदि कोई रेड लाइट पर रुकता है, तो पीछे से हॉर्न बजते हैं, गालियां पड़ती हैं। लोग जल्दबाजी में रहते हैं, ट्रैफिक में समय की कमी से तनाव बढ़ता है और नियम तोड़ना 'स्मार्ट' लगता है। चौथा, सांस्कृतिक पक्ष, भारत में 'जुगाड़' संस्कृति प्रचलित है। नियम तोड़ना 'चालाकी' माना जाता है। एक सर्वे के अनुसार, अधिकांश ड्राइवरों को नियमों की पूरी जानकारी ही नहीं। परिणामस्वरूप, 2023 में 35,000 पैदल यात्री और 10,000 बच्चे दुर्घटनाओं का शिकार बने। यदि जनता जागरूक होती, तो ये आंकड़े कम होते।

इस अवहेलना का एक प्रमुख कारण है कानून प्रवर्तन एजेंसियों की सुस्ती। ट्रैफिक पुलिस की कमी भयानक है। ब्यूरो ऑफ पुलिस रिसर्च एंड डेवलपमेंट के अनुसार, 85,144 ट्रैफिक पुलिस पदों में 30 प्रतिशत और 58,509 कांस्टेबल पदों में 39 प्रतिशत रिक्त हैं। बिना सख्ती के, लोग नियम तोड़ते हैं। क्यों आलसी हैं एजेंसियां? पहला, संसाधनों की कमी। कैमरे, स्पीड गन्स, बॉडी कैमरे, आदि जैसे उपकरण अपर्याप्त हैं। मोटर व्हीकल एक्ट 2019 में सख्त जुर्माने जोड़े गए, लेकिन लागू नहीं होते।

दूसरा, भ्रष्टाचार, छोटे-मोटे उल्लंघनों पर 50-100 रुपये में सेटलमेंट हो जाता है, जिससे डर समाप्त हो जाता है। तीसरा, प्राथमिकताएं, पुलिस अन्य अपराधों पर फोकस करती है, ट्रैफिक को सेकेंडरी मानती है। चौथा, प्रशिक्षण की कमी, अधिकारी सड़क डिजाइन या व्यवहार समझ नहीं पाते। बीबीसी की रिपोर्ट के मुताबिक, खराब सड़क डिजाइन और साइनेज भी दुर्घटनाएं बढ़ाते हैं, लेकिन प्रवर्तन कमजोर है। विदेशों की तरह यदि भारत में भी सख्ती हो, तो सुधार संभव है। ये समस्याएं परस्पर जुड़ी हैं। नियम अवहेलना से दुर्घटनाएं बढ़ती हैं, सेवाओं की कमी से मौतें। समाधान? पहला, आपातकालीन सेवाओं को मजबूत करें हर 10 किमी पर ट्रॉमा सेंटर हों। एकीकृत हेल्पलाइन '112' को मजबूत बनाया जाए। दूसरा, शिक्षा, स्कूलों में ट्रैफिक जागरूकता अभियान चलाए जाएँ। तीसरा, प्रवर्तन, पुलिस भर्ती बढ़ाएं, ई-मॉनिटरिंग लागू करें, भ्रष्टाचार पर अंकुश लगे। चौथा, बुनियादी ढांचा, सड़कें सुधारें, साइनेज बढ़ाएं। सरकार की 'रोड सेफ्टी' योजना को गति दें। नवजोत सिंह जैसी मौतें हमें झकझोरती है, यदि हम नहीं चेते, तो और कितने परिवार बिखरेंगे?

सर्वपितृ अमावस्या आज

कांगड़ा। सनातन परंपरा में आश्विन मास की अमावस्या को अत्यधिक धार्मिक महत्व प्राप्त है। यह पितृपक्ष में किए जाने वाले श्राद्ध, तर्पण और पिंडदान का अंतिम दिन होता है। हिंदू मान्यता के अनुसार इसी दिन पितरों की विधिपूर्वक पूजा करने के बाद उनकी विदाई की जाती है।

पंडित राजिंद्र शास्त्री की मानें तो इस वर्ष सर्वपितृ अमावस्या 21 सितंबर 2025 को पूर्वाह्न 12:16 से प्रारंभ होकर 22 सितंबर को पूर्वाह्न 01:23 बजे समाप्त होगी। इस दिन उदया तिथि के अनुसार पूजा और श्राद्ध किए जाएंगे। पंचांग के अनुसार कुतुप मुहूर्त प्रातःकाल 11:50 से 12:38 बजे तक होगी। रौहिण मुहूर्त 12:38 से 01:27 बजे तक और अपराह्न मुहूर्त 01:27 से 03:53 बजे तक होगा। उन्होंने कहा कि इस दिन तन और मन से पवित्र होकर अपने पितरों की तस्वीर दक्षिण दिशा में चौकी पर रखकर गंगाजल से पवित्र करना चाहिए। इसके बाद पुष्प-माला अर्पित, धूप-दीप दिखाना और पंचबलि निकालना अनिवार्य है। पितरों के निमित्त विशेष रूप से भोग लगाया जाना चाहिए। सर्वपितृ अमावस्या से पहले दिन ही ब्राह्मणों को आदरपूर्वक आमंत्रित करना चाहिए और उन्हें भोजन कराने के साथ यथाशक्ति अन्न-धन का दान करना चाहिए।

दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ चुनाव-2025 में महिला नेतृत्व की वापसी और नए मुद्दों की गूंज

नई दिल्ली। दल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ (डूसू) चुनाव केवल एक शैक्षणिक परिसर की आंतरिक राजनीति भर नहीं है। यह चुनाव राष्ट्रीय राजनीति का आईना भी है, क्योंकि यहां से उठे मुद्दे और नेतृत्व देश की दिशा तय करने में योगदान देते हैं। अनेक प्रमुख नेता चाहे वह अजय माकन हों, अरुण जेटली, विजय गोयल या दिल्ली की मुख्यमंत्री रेखा गुप्ता, सभी ने यहीं से अपने राजनीतिक जीवन की शुरूआत की है। यही कारण है कि डूसू चुनावों को हमेशा से देशभर का ध्यान मिलता रहा है।

इस वर्ष का चुनाव खास है क्योंकि लगभग दो दशकों बाद अध्यक्ष पद की दौड़ में महिला उम्मीदवारों ने प्रमुखता से कदम रखा है। एनएसयूआई ने जोसलिन नंदिता चौधरी को उम्मीदवार बनाया है, जो 17 साल बाद इस पद की महिला दावेदार हैं। वहीं, वामपंथी गठबंधन (एसएफआई-आइसा) ने अंजलि को मैदान में उतारा है। महिला नेतृत्व की यह वापसी केवल प्रतीकात्मक नहीं है, बल्कि यह उन वास्तविक मुद्दों से जुड़ी है जिन्हें ये उम्मीदवार उठा रही हैं– जैसे मासि-ाक धर्म अवकाश, सुरक्षित परिसर, लैंगिक संवेदनशीलता समिति का सशक्तिकरण और छात्राओं के लिए बेहतर सुविधाएं।

इसके अलावा, इस बार घोषणापत्रों में नया तेवर भी देखने को मिल रहा है। हम आपको बता दें कि तीनों प्रमुख छात्र संगठनों– एबीवीपी, एनएसयूआई और एसएफआई-आइसा ने अपने घोषणापत्र जारी कर दिये हैं। एबीवीपी ने शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार को प्राथमिकता देते हुए सब्सिडी वाले मेट्रो पास, मुफ्त वाई-फाई और स्वास्थ्य बीमा जैसी योजनाओं का वादा किया है। वहीं एनएसयूआई ने दिव्यांग छात्रों के लिए भत्ते, पूर्वोत्तर और भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष सहायता, और महिलाओं के लिए अलग घोषणापत्र जारी कर समावेशिता पर जोर दिया है। दूसरी ओर, एसएफआई-आइसा गठबंधन ने फीस वृद्धि के खिलाफ मोर्चा खोलते हुए छात्राओं के लिए मासिक धर्म अवकाश, और परिसर में लोकतांत्रिक समितियों की पुनर्स्थापना का वादा किया है। देखा जाये तो इन घोषणापत्रों से यह साफ झलकता है कि छात्र राजनीति अब केवल पोस्टर-बैनर की जंग नहीं, बल्कि नीतिगत बहस का मंच भी बन रही है। लेकिन डूसू चुनावों का एक सच और भी है कि इन चुनावों की पुरानी छवि यानि धन और बाहुबल का प्रदर्शन, अब भी पीछा नहीं छोड़ रही। दिल्ली उच्च न्यायालय को हाल ही में सख्ती से यह कहना पड़ा कि ट्रैक्टर, जेसीबी और लग्जरी गाड़ियों से प्रचार करना चुनावी प्रक्रिया को दूषित करता है। अदालत ने साफ कर दिया है कि छात्र राजनीति में बाहुबल और धनबल को प्रवेश नहीं करने देना चाहिए। यह चेतावनी इसलिए अहम है क्योंकि यदि छात्र राजनीति भी पैसे और ताकत की गिरफ्त में आ जाएगी, तो यह लोकतंत्र की जड़ों को कमजोर करेगी। डीयू का परिसर केवल पढ़ाई का केंद्र नहीं, बल्कि देश की युवा चेतना का प्रतिबिंब है।

हम आपको बता दें कि डूसू चुनावों के परिणामों का असर हमेशा से राष्ट्रीय दलों की रणनीति पर पड़ता आया है। भाजपा समर्थित एबीवीपी और कांग्रेस समर्थित एनएसयूआई यहां आमने-सामने हैं, जबकि वामपंथी गठबंधन तीसरे ध्रुव की राजनीति को मजबूती से खड़ा करने की कोशिश कर रहा है। यह परिदृश्य कहीं न कहीं राष्ट्रीय राजनीति की ध्रुवीकरण प्रवृत्तियों और नए विकल्पों की तलाश को दशार्ता है।

साथ ही, डूसू चुनावों की महत्ता केवल पदाधिकारियों के चुनाव तक सीमित नहीं है। यह भारत के लोकतांत्रिक भविष्य का संकेतक है। इस बार की विशेषता है– महिला नेतृत्व का उदय, छात्राओं के वास्तविक मुद्दों का केन्द्रीय होना और घोषणापत्रों में नीतिगत विमर्श की छाप। फिर भी असली चुनौती यही है कि क्या छात्र संगठन अदालत की चेतावनियों से सीख लेकर एक ऐसी राजनीति गढ़ पाएंगे जो धन और बाहुबल से मुक्त हो? यदि ऐसा होता है, तो डूसू चुनाव न केवल दिल्ली विश्वविद्यालय के लिए, बल्कि पूरे देश के लिए एक प्रेरणादायक उदाहरण बन सकते हैं।

धान को मिली संजीवनी, बारिश के बीच जिलाधिकारी पहुंचीं मेडिकल कालेज

गोंडा। जिले में कई दिनों से पड़ रही उमस भरी गर्मी के बाद बीते सोमवार की अल सुबह से झमाझम बारिश शुरू हो गई। सुबह करीब छह बजे हल्की हवाओं के साथ तेज बारिश में तब्दील हो गई। 10 बजे तक रुक-रुककर बरसात होती रही। सर्वाधिक 83 मिलीमीटर बरसात तरबगंज क्षेत्र में हुई। इससे किसानों के धान की फसल को संजीवनी मिल गई, गन्ने को भी फायदा हुआ है।

जिले में करीब 15 दिनों से उमसभरी गर्मी पड़ रही है। तेज बारिश न होने से धान की फसल भी सूखने लगी थी। लेकिन सोमवार को हुई बरसात के बाद फसलों को फायदा मिला है। कृषि वैज्ञानिक डॉ. सुधांशु ने बताया कि इस समय गन्ना व धान की फसलों को सिंचाई की जरूरत थी, बरसात होने से काफी फायदा हुआ है। वहीं बारिश के बाद शहर से लेकर गांव तक जलजमाव देखने को मिला। जिला आपदा विशेषज्ञ राजेश श्रीवास्तव ने बताया कि सर्वाधिक बारिश तरबगंज क्षेत्र में 83 मिमी, बेलसर में 70 मिमी, नवाबगंज में 64 व करनैलगंज में 34 मिलीमीटर रिकार्ड किया गया।

बारिश के दौरान जिलाधिकारी प्रियंका निरंजन मेडिकल कॉलेज पहुंच गई। परिसर में घुटनों तक पानी भरा होने पर नाराजगी जताई। उन्होंने मेडिकल कॉलेज व नगर पालिका के अधिकारियों से जल निवासी का समाधान पूछा।

डीएम ने मेडिकल कॉलेज के प्रधानाचार्य, नगर पालिका के ईओ व नगर मजिस्ट्रेट से को आपसी समन्वय बनाकर जल्द ही जल निवासी के इंतजाम करने का निर्देश दिया। डीएम के नाराजगी के बाद टैंकर मंगवाकर पानी निकलवाया गया।

- तरबगंज क्षेत्र में 83 मिमी, बेलसर में 70 मिमी, नवाबगंज में 64 व करनैलगंज में 34 मिलीमीटर की हुई बारिश
- गन्ना व धान की फसलों को सिंचाई की जरूरत थी, बरसात होने से काफी फायदा
- मेडिकल कालेज की बदइंतजामी पर डीएम ने जताई नाराजगी, दिए दिशा निर्देश

किसानों को मिली राहत

इटियाथोक। दो सप्ताह की उमस और तपिश के बाद सोमवार को झमाझम बारिश ने लोगों को बड़ी राहत दी। ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों के चेहरे पर मुस्कान लौट आई। बार-बार सिंचाई से परेशान धान और गन्ना किसानों ने राहत की सांस ली। बिरमापुर के किसान उमेश चंद्र द्विवेदी ने बताया कि यह बारिश फसलों के लिए वरदान साबित हुई।

गिरिधर करुण की नवीनतम कृति कोरे कागज के आखर पुस्तक का विमोचन

सलेमपुर। हिंदी दिवस पखवाड़ा के अंतर्गत नगर के ईचौना पश्चिमी वार्ड में गत रविवार को एक भव्य संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस अवसर पर साहित्य जगत के प्रतिष्ठित कवि एवं साहित्यकार गिरिधर करुण को सम्मानित किया गया तथा उनकी नवीनतम काव्य कृति 'कोरे कागज के आखर' का लोकार्पण किया गया। संगोष्ठी को संबोधित करते हुए कवि गिरिधर करुण ने कहा कि हिंदी केवल भाषा नहीं, बल्कि भारत की आत्मा, एकता और सांस्कृतिक गौरव का प्रतीक है। उन्होंने स्मरण दिलाया कि 14 सितंबर 1949 को संविधान सभा ने देवनागरी लिपि में हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्रदान किया था। आज आवश्यकता है कि हिंदी के प्रचार-प्रसार को और व्यापक बनाया जाए ताकि यह वैश्विक स्तर पर अपनी अस्मिता और शक्ति को और मजबूती से स्थापित कर सके। सेंट जेवियर्स स्कूल के प्रधानाचार्य वी.के. शुक्ल ने कहा कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 के तहत हिंदी को भारत संघ की राजभाषा घोषित किया गया। बिहार पहला राज्य था जिसने उर्दू के स्थान पर हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में अपनाया।

उन्होंने यह भी बताया कि विश्व में हिंदी तीसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। पूर्व प्रधानाचार्य नरसिंह तिवारी ने कहा कि हिंदी विश्व की प्राचीन और समृद्ध भाषाओं में से एक है, जो देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। इस लिपि को सरल और वैज्ञानिक माना जाता है। पूर्व प्रधानाचार्य भागीरथी प्रसाद ने ऐतिहासिक संदर्भ देते हुए कहा कि वर्ष 1953 में तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने संसद भवन में 14 सितंबर को प्रतिवर्ष राष्ट्रीय हिंदी दिवस मनाने की घोषणा की थी।

संगोष्ठी को कवि संजय मिश्र, अश्विनी पांडेय, राजेश्वर द्विवेदी, डॉ. धर्मेंद्र पांडेय, रामविलास तिवारी, अवनीश चंद्र भास्कर, दीनदयाल यादव, के.पी. गुप्त, आनंद उपाध्याय, एस.एन. मिश्र, गोपाल यादव, मनीष रजक, राकेश यादव, सी.पी. शुक्ल, फैज इमाम सहित कई विद्वानों और साहित्यकारों ने संबोधित किया। साहित्यिक वातावरण से ओतप्रोत इस आयोजन ने न केवल हिंदी की महत्ता को उजागर किया बल्कि नई पीढ़ी को इसकी गरिमा और प्रासंगिकता से भी अवगत कराया।

राप्ती की धारा कालेसर से डोमिनगढ़ की तरफ मुड़ी, ग्रामीण दहशत में

रोहिन-सरयू का पानी भी भर रहा है निचले इलाकों में सरयू नदी का जलस्तर एक बार फिर बढ़ने लगा है। बरहज में नदी खतरे के निशान से 90 सेमी ऊपर बह रही है। वहीं रोहिन नदी तिनमुहानी घाट पर खतरे के निशान से 80 सेमी जबकि भौराबारी में 18 सेमी ऊपर पहुच गई है। राप्ती की सहयोगी गोरा नदी भी बढ़ने लगी है।

गोरखपुर। करीब 15 वर्षोंपरान्त अचानक राप्ती की धारा कालेसर से डोमिनगढ़ की तरफ मुड़ गई है। इससे गीडा के नजदीक बसे गांव उतरासोत के सामने नदी तेजी से बांध की तरफ कटान करने लगी है। 24 घंटे में ही कटान करीब 400 मीटर लंबाई में शुरू हो गया है। इससे गाहासाड़-कोलिया तटबंध की सुरक्षा खतरे में पड़ गई है। इससे आसपास के ग्रामीण दहशत में आ गए हैं। मामले की जानकारी होने पर मुख्यमंत्री तक पहुंची तो उनके निर्देश पर बाढ़ खंड के अफसर बंधे को बचाने की कवायद में जुट गए हैं। इसके बाद बाढ़ खंड ने मौके पर रात-दिन बचाव कार्य शुरू कराया है। उधर, राप्ती नदी इस सीजन में पहली बार खतरे के निशान पर पहुंची है। वहीं रोहिन नदी खतरे के निशान से 80 सेंटीमीटर और सरयू 90 सेंटीमीटर ऊपर पहुंच गई है। इससे जिले में बाढ़ का खतरा बढ़ गया है। बड़हलगंज इलाके में आठ गांव बाढ़ से घिर गए हैं। कैंपियरगंज इलाके में भी बांध का ड्रोन सर्वे कराया गया है।

राप्ती नदी बीते सप्ताह खतरे के निशान से साढ़े तीन मीटर नीचे थे। सोमवार से नेपाल में हो रही बारिश के बाद नदी का जलस्तर बढ़ने लगा। बीते शुक्रवार शाम चार बजे नदी खतरे के निशान से मात्र चार सेमी नीचे बह रही थी। सिंचाई विभाग के अभियंताओं ने बताया देर शाम नदी खतरे के निशान से ऊपर पहंच गई। संतकबीरनगर जिले से गोरखपुर में प्रवेश कर रही राप्ती नदी कालेसर से डोमिनगढ़ की तरफ मुड़ जाती है। डोमिनगढ़ पुल के पास रोहिन नदी इसमें मिलती है। इसके बाद नदी फिर नौसड़ की तरफ आती है। कालेसर से नौसड़ के बीच नदी अंग्रेजी के अक्षर एस के आकार में बहती है।

ग्रामीण बताते हैं कि वर्ष 2012 के बाद पहली बार नदी में कालेसर से डोमिनगढ़ की तरफ बहाव तेज हुआ है। इसके चलते ही उतरासोत गांव के सामने बृहस्पतिवार को ठोकर नंबर 6 के सामने कटान शुरू हुआ था। शुक्रवार को कटान बढ़कर ठोकर नंबर सात व आठ के बीच तक फैल गया। गाहासाड़-कोलिया तटबंध के समीप बसे उतरासोत गांव के पास नदी ने कटान शुरू किया तो इसकी सूचना सीएम योगी आदित्यनाथ तक दी गई।

मुख्यमंत्री कार्यालय से जानकारी मांगे जाने के बाद प्रशासनिक अमला भी हरकत में आ गया। सिंचाई विभाग के अधिकारी मौके पर कैंप कर रहे हैं। वहां बांस, पेड़ की टहनी के अलावा ईंट के टुकड़ों को

उतरासोत गांव के पास नदी जहां कटान कर रही थी, उसका दायरा कुछ बढ़ गया है। 400 मीटर के दायरे में कटान निरोधक कार्य कराया जा रहा है। रात में कार्य कराने में किसी प्रकार की दिक्कत न हो इसके लिए दो जनरेटर लगाया गया है।
केपी सिंह,
अधीक्षण अभियंता
सिंचाई विभाग

लोहे की जाली में भरकर कटान वाली जगह पर गिराया जा रहा है, जिससे कि कटान को रोका जा सके। बंधे पर दो दो जनरेटर लगाकर रात में भी कार्य कराया जा रहा है। विभाग का दावा है कि स्थिति पूरी तरह से नियंत्रण में है।

21वीं सदी का साहित्य : नव विमर्श विषयक दो दिवसीय संगोष्ठी संपन्न

भिवानी (हरियाणा)। वेल्स इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस टेक्नोलॉजी एवं एडवांस स्टडीज, चेन्नई तथा बोहल शोध मंजूषा के संयुक्त तत्वावधान में गत 13 व 14 सितम्बर 2025 (हिंदी दिवस) को भिवानी स्थित संस्था सभागार एवं ऑनलाइन माध्यम से दो दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी 21वीं सदी का साहित्य : नव विमर्श सफलतापूर्वक आयोजित की गई।

संगोष्ठी में पर्यावरण विमर्श, नारी विमर्श, किसान विमर्श, किन्नर विमर्श, हिंदी भाषा विकास सहित समकालीन साहित्य के विविध आयामों पर सारगर्भित चर्चा हुई। इस अवसर पर देश-विदेश से 150 से अधिक प्राध्यापक, शिक्षाविद एवं शोधार्थियों ने सहभागिता करते हुए अपने शोधपत्र प्रस्तुत किए। 13 सितम्बर 2025 के सत्र की अध्यक्षता डॉ. सुशीला आर्या (सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, चौ. बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी) ने की। स्वागत भाषण डॉ. दिनेश सोनी ने दिया। मुख्य वक्ताओं में डॉ. ऋतु शर्मा (नीदरलैंड), डॉ. राजकुमारी शर्मा (दिल्ली), डॉ. संजय कुमार (रांची), डॉ. वर्षा रानी (आगरा) तथा डॉ. मोहम्मद सलीम (दिल्ली) प्रमुख रहे। मंच संचालन डॉ. मुकेश कुमार ऋषि वर्मा ने किया जबकि डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने आभार व्यक्त किया। 14 सितम्बर 2025 के सत्र की अध्यक्षता डॉ. वी. पद्मावती (कोयंबटूर) ने की। स्वागत भाषण डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन (चेन्नई) तथा अध्यक्षीय भाषण प्रो. डॉ. पी षणमुख सुंदरम, डीन, स्कूल ऑफ फार्मास्यूटिकल साइंसेज एवं निमार्ता, इंस्टीट्यूशन कोलैबोरेशन, वीआईएसटीएएस, चेन्नई) ने दिया। आमंत्रित वक्ताओं में डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी (काठमाण्डू, नेपाल), डॉ. अजयपाल सिंह (पंजाब), डॉ. मोहम्मद रियाज खान (बेंगलुरु), डॉ. राकेश शंकर भारती (यूक्रेन) एवं डॉ. सीएच. वी. महालक्ष्मी (आंध्र प्रदेश) शामिल रहे। साथ ही डॉ. शिवकरण निमल (राजस्थान) ने महिला बचत एवं आर्थिक योगदान पर सारगर्भित विचार रखे। मंच संचालन डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने किया तथा आभार डॉ. अनुराधा पी. (चेन्नई) ने व्यक्त किया।

संगोष्ठी में वक्ताओं ने स्पष्ट किया कि '21वीं सदी का साहित्य सामाजिक बदलावों और बहुविमर्शीय दृष्टिकोण का आईना है।' डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट (सम्पादक, बोहल शोध मंजूषा) ने कहा कि इस प्रकार की संगोष्ठियाँ भविष्य के साहित्यिक विमर्शों को नई दिशा देती हैं। कार्यक्रम के सफल संचालन हेतु डॉ. इशारी के. गणेश (संरक्षक), डॉ. पूर्णिमा एस. (संयोजक), डॉ. अनुराधा पी. व सुश्री वी. अमुधा (सह संयोजक) तथा डॉ. मुकेश कुमार ऋषि वर्मा (व्यवस्थापक) के सहयोग को विशेष सराहा गया। इसके साथ ही हिंदी सेवी महानुभावों को हिंदी रत्न सम्मान भी प्रदान किया गया। उक्त सम्मान बृजलोक साहित्य कला संस्कृति अकादमी, उ.प्र. के सौजन्य से दिया गया। कार्यक्रम पूर्णतः सफल रहा।

सांझी प्रतियोगिता में बच्चों ने किया प्रतिभाग

मेरठ। कनोहर लाल स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय के चित्रकला विभाग में गत दिनों शुक्रवार को सांझी आर्ट-वर्क प्रतियोगिता आयोजित की गई। प्रतियोगिता में स्नातकोत्तर स्तर की तनु, काजल, संध्या, आकांक्षा, अनु, प्रिया वर्मा ने व स्नातक स्तर की राधिका रस्तोगी, निक्की, रितु ने भाग लिया। छात्राओं ने सांझी बनाकर अपनी कला का हुनर दिखाया। प्रतियोगिता की श्रेष्ठ पांच कलाकृतियों को आरजीपीजी कॉलेज में प्रदर्शनी के लिए भेजा जाएगा। प्रो. किरण प्रदीप ने कहा कि कला के माध्यम से छात्राओं की अंदर छिपी प्रतिभा उजागर होगी। कार्यक्रम में विभागाध्यक्ष प्रो. ज्योत्स्ना, प्रवक्ता डॉ. शुभा मालवीय, उमा जोशी और नजमा का सहयोग रहा।

निराश्रित श्वानों के लिए फीडिंग सेंटर शुरू

कानपुर। नगर निगम ने आवारा कुत्तों (निराश्रित श्वानों) के लिए गत दिनों गुरुवार को 55 डॉग फीडिंग सेंटरों का संचालन शुरू किया। मुख्य पशु चिकित्साधिकारी ने निरीक्षण कर इन सेंटरों आसपास के सभी कुत्तों के वैक्सीनेशन के निर्देश दिए। नगर आयुक्त सुधीर कुमार के निर्देश पर पशु चिकित्सा विभाग ने पहल की है। उच्चतम न्यायालय के आदेश के बाद नगर निगम विभिन्न क्षेत्रों में फीडिंग सेंटर शुरू किए हैं। अफसरों का कहना है कि आवारा कुत्तों को अब सिर्फ इन निर्धारित स्थलों पर ही भोजन कराया जाएगा। उल्लंघन करने वालों के खिलाफ कार्यवाही की जाएगी।

नगर आयुक्त ने बताया कि फीडिंग सेंटरों की स्थापना से न केवल श्वानों को सुरक्षित ढंग से भोजन मिलेगा बल्कि नागरिकों की सुरक्षा भी सुनिश्चित होगी। मुख्य पशु चिकित्साधिकारी डॉ. आरके निरंजन ने कहा कि सभी के सहयोग से ही अभियान सुनिश्चित हो सकता है। निराश्रित श्वानों की देखभाल में उत्कृष्ट कार्य करने वाले निकायों, एनजीओ और पशुप्रेमियों को राज्य सरकार सम्मानित करेगी।

स्कूली वाहनों के खिलाफ जांच अभियान

गोरखपुर। संभागीय परिवहन अधिकारी प्रवर्तन संजय कुमार झा के नेतृत्व में गत बृहस्पतिवार को स्कूली वाहनों के खिलाफ जांच अभियान चलाया गया। इसमें नियम विरुद्ध पाए गए नौ वाहनों को जब्त किया गया। जबकि सात वाहनों का चालान किया गया।

जांच टीम ने इस्लामिया कॉलेज बक्शीपुर, बालिका इंटर कॉलेज ककराखोर, ग्लोरियस स्कूल बड़ा सरकारी अस्पताल, कृष्ण एकेडमी गीडा, नक्षत्र पब्लिक स्कूल, लक्ष्य एकेडमी गोला समेत कई विद्यालयों के वाहनों को मानक के अनुरूप न मिलने पर जब्त किया। इसके अलावा ज्ञान स्थली एकेडमी खजनी, हेरीटेज एकेडमी रामपुर मिश्रौली, कुसुम इंटर कॉलेज उनवल, एनएमएम पब्लिक स्कूल और दो अन्य वाहनों का चालान किया गया। अभियान के दौरान जीडी इंटरनेशनल स्कूल बांसगांव, एसएसबीएसएस कॉलेज मिटहा कौड़ीराम, एसवाई मेमोरियल बांसगांव के तीन निजी वाहनों को स्कूली बच्चों को ढोने के आरोप में जब्त किया गया। वहीं एवीएन पब्लिक स्कूल बांसगांव के एक निजी वाहन का चालान किया गया। अभियान का नेतृत्व सहायक संभागीय परिवहन अधिकारी प्रवर्तन नरेंद्र यादव ने किया। उनके साथ यात्रीकर अधिकारी वीके आनंद और रमाति मौजूद रहे। परिवहन विभाग ने सभी विद्यालय प्रबंधकों और प्रधानाचार्यों से अपील की है कि विद्यार्थियों की सुरक्षा के लिए वाहनों की पूरी तरह फिटनेस जांच कराएं और सभी जरूरी कागजात पूर्ण होने पर ही वाहनों का संचालन करें।

ऐसे संशोधनों से क्या लाभ ....

इधर संसद से पारित होकर कोई विधेयक कानून का रूप लेता है, उधर विपक्षी दलों के कुछ नेता और याचिकाबाज वकील सुप्रीम कोर्ट के दरवाजे पर उसे चुनौती देने के लिए खड़े मिलते हैं।

वर्तमान वर्ष के अप्रैल में जब संसद के दोनों सदनों से पारित हुआ वक्फ संशोधन विधेयक। विपक्ष ने इसे घोर असंवैधानिक और मनमाना करार दिया था। कुछ विपक्षी नेताओं ने इसे मुसलमानों की मस्जिदें-कब्रिस्तान छीनने वाला कानून बता दिया था-ठीक वैसे ही जैसे नागरिकता संशोधन कानून (सीएए) को मुसलमानों की नागरिकता छीनने वाला बताकर उन्हें सड़क पर उतारा गया था परिणामतः कई जगह हिंसक वातावरण।

संसद से वक्फ संशोधन विधेयक के पारित होने के बाद जैसे ही उसने कानून का रूप लिया, वैसे ही सुप्रीम कोर्ट उसकी वैधानिकता का परीक्षण करने के लिए तैयार मिला, क्योंकि इस कानून को चुनौती देने के लिए कई याचिकाएं दाखिल कर दी गई थीं। अब ऐसा संसद से बने-संशोधित हुए करीब-करीब प्रत्येक बड़े कानून के साथ होने लगा है। सुप्रीम कोर्ट लोकसभा, राज्यसभा के बाद एक तरह से तीसरे सर्वोच्च सदन की तरह काम करने लगा है। इधर संसद से पारित होकर कोई विधेयक कानून का रूप लेता है, उधर विपक्षी दलों के कुछ नेता और याचिकाबाज वकील सुप्रीम कोर्ट के दरवाजे पर उसे चुनौती देने के लिए खड़े मिलते हैं। निःसंदेह सुप्रीम कोर्ट को प्रत्येक कानून की संवैधानिकता परखने का अधिकार है, लेकिन क्या अब हर कानून अमल में आने के पहले सुप्रीम कोर्ट पहुंचेगा?

तीन कृषि कानूनों के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने एक कदम आगे बढ़कर इन कानूनों की संवैधानिकता पर विचार किए बिना ही उनके अमल पर रोक लगा दी थी। यह सुप्रीम कोर्ट की ओर से अपने अधिकारों का किया जाने वाला खुला-नग्न अतिक्रमण था। इन कानूनों के अमल पर रोक लगाते हुए सुप्रीम कोर्ट ने उनकी समीक्षा के लिए एक समिति गठित कर दी थी, लेकिन जब इस समिति ने अपनी रिपोर्ट दी तो उसने उसे देखने की भी जहमत नहीं उठाई।

वह कृषि कानून विरोधी आंदोलन के नेताओं की ओर से राजमार्ग रोकने के मामले में भी हाथ पर हाथ धरे बैठा रहा। अंततः दुष्प्रचार के चलते ऐसी परिस्थितियां बनीं कि मोदी सरकार कृषि कानूनों को वापस लेने पर बाध्य हुई। इससे किसानों का कितना भला हुआ, यह किसान नेता ही जानें। इन कानूनों को लेकर यह अफवाह फैलाई गई थी कि इनके जरिये किसानों के खेत छीने जाएंगे। चूंकि ये कानून अमल में ही नहीं आए, इसलिए कथित किसान नेता यह थोथा दावा कर सकते हैं कि अंततः किसानों के खेत छिनने से बच गए, लेकिन सीएए तो लागू हो चुका है। किसी को पता हो तो बताए कि कितने मुसलमानों की नागरिकता छिनी? नागरिकता, खेत, कब्रिस्तान या फिर और कुछ छीने जाने का शोर मचाने के लिए किसी नए कानून का निर्माण या फिर उसमें संशोधन किया जाना ही आवश्यक नहीं। अभी हाल में जब चुनाव आयोग की ओर से बिहार में मतदाता सूची के सत्यापन की प्रक्रिया शुरू की गई तो तत्काल यह शोर मचा कि इसका उद्देश्य दलितों, गरीबों, अल्पसंख्यकों यानी मुसलमानों के वोट छीनना है।

सुप्रीम कोर्ट ने इस प्रक्रिया को जारी रखने की अनुमति देकर विपक्षी दलों और साथ ही लोकतंत्र के स्वयंभू चैंपियनों के इस दुष्प्रचार की हवा निकाल दी कि चुनाव आयोग बिहार के बेचारे लोगों के वोट छीनने का काम कर रहा है। इतना ही नहीं, सुप्रीम कोर्ट ने बिहार के सभी मान्यता प्राप्त दलों को इस मामले में पक्षकार बनाया और उन्हें इसके लिए बाध्य किया कि वे मतदाता सूची के विशेष गहन पुनरीक्षण यानी एस-आइआर की प्रक्रिया में भाग लें। मरता क्या न करता, वे बेमन से ही सही, यह काम कर रहे हैं।

यह अच्छा हुआ कि सुप्रीम कोर्ट ने वक्फ संशोधन कानून पर पूरी तरह रोक लगाने से इन्कार कर दिया। उसने अपने अंतरिम फैसले में इसके चंद प्रविधानों पर ही रोक लगाई। यह उल्लेखनीय है कि उसने संशोधित कानून में वक्फ बाई यूजर के प्रविधान को खत्म करने को मनमाना नहीं माना। इसका मतलब है कि यह प्रविधान नहीं होगा। पुराने कानून के अनुसार यदि कोई संपत्ति लंबे समय से वक्फ द्वारा इस्तेमाल की जा रही है तो आवश्यक दस्तावेजों के अभाव में भी उसे वक्फ संपत्ति माना जाता था। अब ऐसा नहीं होगा। अब कागज दिखाने होंगे।

वक्फ संशोधन कानून के जरिये 14 बड़े बदलाव किए गए थे। सबसे बड़ा बदलाव वक्फ कानून की धारा 40 को खत्म करने का था। इस धारा के तहत वक्फ बोर्डों को किसी भी संपत्ति को अपना बताने का मनमाना अधिकार मिला था। यदि वक्फ बोर्ड ऐसा कर देते थे तो इसके खिलाफ सुनवाई केवल वक्फ ट्रिब्यूनल में ही हो सकती थी।

यदि ट्रिब्यूनल भी पीड़ित के प्रतिकूल फैसला दे दे तो उसके खिलाफ केवल रिट याचिका ही दायर हो सकती थी। रिट याचिका का प्रभाव सीमित ही होता है। वक्फ कानून को दमनकारी स्वरूप 1995 में मिला। शायद इसलिए मिला, क्योंकि अयोध्या में विवादित ढांचे के ध्वंस के बाद मुस्लिम कांग्रेस से नाराज थे। कांग्रेस उन्हें संतुष्ट करने के लिए कुछ भी करने को तैयार थी। इसका नतीजा यह हुआ कि वक्फ कानून में ऐसे संशोधन कर दिए गए, जिससे वक्फ बोर्डों को मनमाने अधिकार मिल गए।

सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र अवॉर्ड से सम्मानित हुए डॉ. चक्रपाणि ओझा

वाराणसी। बीएचयू के पूर्व छात्र डॉ. चक्रपाणि ओझा के शोध पत्र को बृहस्पतिवार को सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र अवॉर्ड मिला। यह अवार्ड उन्हें श्री दिगंबर जैन अयोध्या तीर्थ क्षेत्र कमेटी बड़ी मूर्ति और तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत महासंघ के सहयोग से जैन शास्त्रों का संरक्षण और प्रबंधन पर आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में दिया गया। मुख्य अतिथि पालि और बौद्ध अध्ययन के पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. लालजी श्रावक और विशिष्ट अतिथि डिप्टी लाइब्रेरियन डॉ. संजीव सराफ ने डॉ. चक्रपाणि को सम्मानित किया। डॉ. चक्रपाणि ओझा ने अपने पत्र में प्राचीन शास्त्रों के संरक्षण और प्रबंधन की योजना बताई है। उन्होंने बताया कि कंप्यूटर के युग में आज लोगों ने हाथ से लिखना छोड़ दिया है। पांडुलिपियां हमारी राष्ट्रीय धरोहर हैं। इन्हें आगामी पीढ़ी तक पहुंचाने से अपने पूर्वजों की बौद्धिक संपदा पर गर्व होगा।

राप्ती नदी में बारिश के बाद बढ़ता जल स्तर

स्थानीय स्तर पर बारिश दौर जारी: उफनाई नदियां बढ़ी खतरे की तरफ़

- राप्ती नदी के जलस्तर में करीब दो मीटर की बढ़ोतरी दर्ज
- रोहिन नदी अब खतरे के निशान से मात्र 39 सेंटीमीटर नीचे
- सरयू नदी के जलस्तर में भी पांच सेंटीमीटर की बढ़त
- जलस्तर में और इजाफा होने पर निचले इलाकों में पानी घुसने का खतरा

गोरखपुर। नेपाल में लगातार हो रही बारिश का असर गोरखपुर से होकर बहने वाली नदियों पर साफ दिखाई देने लगा है। राप्ती नदी के जलस्तर में करीब दो मीटर की बढ़ोतरी दर्ज की गई है। वहीं, रोहिन नदी अब खतरे के निशान से मात्र 39 सेंटीमीटर नीचे रह गई है। जलस्तर में यही रफ्तार बनी रही तो कैंपियरगंज, गोरखपुर सदर और बड़हलगंज क्षेत्र में बाढ़ जैसे हालात उत्पन्न हो सकते हैं।

नेपाल की तराई में भारी बारिश होने पर गोरखपुर की नदियां तेजी से उफान पर आ जाती हैं। इधर, दो दिन से नेपाल के मैदानी इलाकों में तेज बारिश हो रही है। इसका असर राप्ती, रोहिन, गंडक आदि नदियों के जलस्तर पर पड़ने लगा है।

नेपाल से निकलकर यूपी में नदियों में मिलने वाले बरसाती नालों का जलस्तर भी तेजी से बढ़ रहा है। सरयू नदी के जलस्तर में भी पांच सेंटीमीटर की बढ़त दर्ज की गई है।

इस नदी में तीन लाख क्यूसेक पानी छोड़ा गया है, जिससे तटवर्ती इलाकों में लोगों की चिंता और बढ़ गई है।

वहीं, स्थानीय बारिश का सिलसिला भी जारी है और मौसम विभाग ने अगले तीन दिनों तक हल्की से मध्यम वर्षा की संभावना जताई है। इससे आमी और गोर्रा नदी का जलस्तर भी बढ़ सकता है। हालात को देखते हुए प्रशासन ने तटबंधों की निगरानी तेज कर दी है। जलस्तर में और इजाफा होने पर निचले इलाकों में पानी घुसने का खतरा है।

घूँघट की बगावत

21 सितम्बर 2025

प्रत्येक रविवार को प्रकाशित
हिन्दी साप्ताहिक समाचार पत्र

4

समय के साथ बदलती पीढ़ियाँ और उनका समाज पर असर

समाज में समय-समय पर होने वाले परिवर्तन केवल राजनीति या तकनीकी तक सीमित नहीं रहते, बल्कि इंसान की सोच, जीवनशैली और संस्कृति पर गहरा असर डालते हैं। यही कारण है कि अलग-अलग वर्षों में जन्म लेने वाले लोगों को अलग-अलग ₹जनरेशन₹ के रूप में पहचाना जाता है। आजकल स्कूलों, कॉलेजों और यहाँ तक कि कॉरपोरेट दुनिया में भी ₹जेन-जी₹ और ₹जेन अल्फा₹ जैसे शब्द आम हो गए हैं। लेकिन सवाल यह है कि ये पीढ़ियाँ हैं क्या, इनकी सोच और चुनौतियाँ किन मायनों में अलग हैं और क्या यह फर्क समाज को मजबूत बना रहा है या विभाजन पैदा कर रहा है? जनरेशन दरअसल वह समूह है जो लगभग समान समयावधि में जन्म लेता है और अपने बचपन व युवावस्था में समान सामाजिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों का अनुभव करता है। स्वतंत्रता संग्राम के दौर में जन्मे बच्चे और आज के डिजिटल युग में जन्मे बच्चों की सोच और जीवनशैली में जमीन-आसमान का फर्क है। यही फर्क हर पीढ़ी की पहचान बन जाता है। अमेरिका और यूरोप में बीसवीं सदी की शुरूआत में पीढ़ियों को वगीकृत करने का चलन शुरू हुआ और अब भारत सहित पूरी दुनिया में इसे अपनाया जा रहा है।

बीसवीं सदी की शुरूआत से लेकर अब तक कई पीढ़ियाँ सामने आई हैं। 1901 से 1927 के बीच जन्म लेने वाली ₹ग्रेटेस्ट जनरेशन₹ ने प्रथम विश्व युद्ध और महामंदी की कठिन परिस्थितियों का सामना किया। इनकी ज़िंदगी अनुशासन और त्याग से भरी रही। इसके बाद 1928 से 1945 तक जन्मे लोग ₹साइलेंट जनरेशन₹ कहलाए। यह वह पीढ़ी थी जिसने द्वितीय विश्व युद्ध, गरीबी और विस्थापन के बीच अपना बचपन गुजारा। भारत में यही पीढ़ी स्वतंत्रता और विभाजन दोनों की गवाह बनी। 1946 से 1964 के बीच जन्म लेने वाली पीढ़ी ₹बेबी बूमर्स₹ के नाम से जानी गई। युद्ध के बाद जन्म दर में तेजी से वृद्धि हुई और दुनिया पुनर्निर्माण की ओर बढ़ी। भारत में यह वही लोग थे जिन्होंने पहली बार स्वतंत्र नागरिक का दर्जा पाया और औद्योगिकीकरण तथा हरित क्रांति के दौर को देखा।

1965 से 1980 के बीच जन्म लेने वाली ₹जेनरेशन एक्स₹ तकनीकी क्रांति की आहट के साथ बड़ी हुई। टीवी और रेडियो इनके जीवन का हिस्सा बने। भारत में इस पीढ़ी ने आपातकाल और आर्थिक संकट का समय देखा, इसलिए यह व्यावहारिक और आत्मनिर्भर मानी जाती है। इसके बाद 1981 से 1996 तक जन्म लेने वाली पीढ़ी ₹मिलेनियल्स₹ या ₹जेन-वाई₹ कहलायी। इसने इंटरनेट और वैश्वीकरण का दौर देखा। नई महत्वाकांक्षाओं और सपनों से भरे इन युवाओं ने आईटी क्रांति और मोबाइल तकनीक का लाभ उठाया। 1997 से 2012 तक जन्म लेने वाली ₹जेनरेशन-जी₹ डिजिटल नेटिव कहलाती है। इन बच्चों ने बचपन से ही इंटरनेट, स्मार्टफोन और सोशल मीडिया को अपने जीवन का हिस्सा बना लिया। इनकी पहचान आत्मविश्वास, रचनात्मकता और तेज सोच है, लेकिन अधीरता और प्रतिस्पर्धा भी इनमें साफ दिखाई देती है। इसके बाद 2013 से 2025 के बीच जन्म लेने वाले बच्चे ₹जेनरेशन अल्फा₹ के नाम से पहचाने जाते हैं। ये बच्चे ऐसे माहौल में पले-बढ़ रहे हैं जहाँ आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, वर्चुअल रियलिटी और रोबोटिक्स रोजमर्रा की ज़िंदगी का हिस्सा बन चुके हैं। इनके खिलौने भी स्मार्ट डिवाइस हैं और शिक्षा पूरी तरह ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर आधारित होती जा रही है।

जेनरेशन-जी की कुछ खास विशेषताएँ इन्हें औरों से अलग करती हैं। यह पहली पीढ़ी है जिसने बचपन से ही डिजिटल आईडी बनाई। किताबों और अखबारों की जगह यूट्यूब, इंस्टाग्राम और नेटफ्लिक्स इनकी पसंद बन गए। ये मल्टीटास्किंग में माहिर हैं, आत्मनिर्भर और स्वतंत्र सोच रखते हैं, लेकिन इनकी सबसे बड़ी चुनौती ध्यान केंद्रित करने की क्षमता का कम होना है। सोशल मीडिया से होने वाली तुलना इनके मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है और कई बार चिंता व अवसाद जैसी समस्याएँ भी पैदा करती है। जेनरेशन अल्फा का भविष्य और भी अनोखा होगा। यह मानव इतिहास की पहली पूरी तरह डिजिटल नेटिव पीढ़ी है। इनके खिलौने रोबोट हैं, शिक्षा वर्चुअल क्लासरूम में हो रही है और इनके खेल का मैदान मेटावर्स तथा ऑगमेंटेड रियलिटी है। ये वैश्विक स्तर पर सोचेंगे क्योंकि इन्हें बचपन से ही दुनिया से जुड़े प्लेटफॉर्म मिल रहे हैं, लेकिन साथ ही यह खतरा भी रहेगा कि इनका वास्तविक दुनिया से जुड़ाव कमजोर हो जाए। हर पीढ़ी पिछली से अलग रही है। बेबी बूमर्स नौकरी और स्थिरता को महत्व देते थे, जेन-एक्स ने संतुलन साधा, मिलेनियल्स ने उद्यमिता और सपनों पर ध्यान दिया, जबकि जेन-जी और अल्फा तेजी, सुविधा और त्वरित संतुष्टि को महत्व देते हैं। यही अंतर कभी-कभी संवाद की खाई भी पैदा कर देता है।

भारतीय संदर्भ में पीढ़ियों का असर और भी विविध है। गाँव और शहर में अनुभव अलग हैं। गाँव के बच्चे आज भी पारंपरिक खेलों और सामाजिक आयोजनों से जुड़े रहते हैं, जबकि शहरों के बच्चे मोबाइल और लैपटॉप की दुनिया में खोए रहते हैं। जेन अल्फा में यह अंतर और भी गहरा होगा। आर्थिक असमानता और शिक्षा का स्तर भी इस खाई को बढ़ाता है। जेन-जी और अल्फा बच्चों के सामने कई चुनौतियाँ खड़ी होंगी। सबसे पहली चुनौती मानसिक स्वास्थ्य है। लगातार स्क्रीन टाइम और सोशल मीडिया के दबाव ने चिंता और अवसाद जैसी समस्याओं को जन्म दिया है। दूसरी चुनौती सामाजिक जुड़ाव की है। वर्चुअल दुनिया में रिश्ते तो बनते हैं, लेकिन असली संबंध कमजोर पड़ जाते हैं। तीसरी चुनौती रोजगार की अनिश्चितता है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और ऑटोमेशन पारंपरिक नौकरियों को खत्म कर रहे हैं। ऐसे में नई स्किल्स सीखना बच्चों के लिए अनिवार्य होगा। इन चुनौतियों से निपटने के लिए समाधान भी संभव हैं। माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चों को डिजिटल और वास्तविक जीवन का संतुलन सिखाएँ। शिक्षा प्रणाली को केवल अंकों तक सीमित न रखकर रचनात्मकता, सहयोग और भावनात्मक बुद्धिमत्ता पर जोर देना होगा। सबसे जरूरी यह है कि बच्चों को प्रकृति और समाज से जोड़ा जाए। अगर पुरानी पीढ़ियों का अनुभव और नई पीढ़ियों की ऊर्जा आपस में मिल जाए, तो यह पीढ़ियाँ न केवल तकनीकी रूप से सक्षम होंगी बल्कि मानवीय दृष्टि से भी संवेदनशील बनेंगी। अंत में कहा जा सकता है कि जेनरेशन-जी और अल्फा केवल नाम नहीं बल्कि समाज और राष्ट्र का भविष्य हैं। पीढ़ियाँ बदलना स्वाभाविक है, लेकिन हर पीढ़ी की ताकत और सीख को समझना जरूरी है। अगर हम अनुभव और ऊर्जा का मेल कर पाए, तो समाज संतुलित और प्रगतिशील बनेगा। यह हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है कि हम आने वाली पीढ़ियों को तकनीकी रूप से दक्ष और मानवीय दृष्टि से संवेदनशील बनाकर सही दिशा दें।

सेवा पखवाड़ा: जनसेवा से जनविश्वास तक की यात्रा

भाजपा का सेवा पखवाड़ा केवल एक आयोजन नहीं, बल्कि सेवा को राजनीति की आत्मा बनाने का प्रयास है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी के 75वें जन्मदिन से शुरू होकर गांधी जयंती तक चलने वाला यह पखवाड़ा राष्ट्र को यह संदेश देता है कि जनसेवा ही जनसंपर्क की सबसे पवित्र भाषा है। जब लाखों कार्यकर्ता झाड़ू लेकर गली-मोहल्लों में उतरते हैं, रक्तदान करते हैं, पौधारोपण करते हैं और स्वास्थ्य शिविर लगाते हैं, तो यह केवल काम नहीं, बल्कि एक भावना है—ह्लमैं भी अपने देश के लिए कुछ कर रहा हूँ। सेवा पखवाड़े के दौरान हर कोने में सेवा की तस्वीरें दिखीं। कहीं स्कूली बच्चों को मुफ़्त दवाइयाँ मिलीं, कहीं युवाओं ने रक्तदान कर जीवन बचाने का संकल्प लिया। दिल्ली में अधोसंरचना परियोजनाओं की सौगात दी गई तो मध्य प्रदेश में महिलाओं के स्वास्थ्य पर केंद्रित अभियान चला। लखनऊ की सड़कों पर मंत्री से लेकर सफाईकर्मी तक एक साथ झाड़ू उठाते दिखे। प्रधानमंत्री मोदी ने इस अवसर पर कहा—हमारे जीवन का मूलमंत्र ही सेवा है। अगर माँ स्वस्थ होगी, तो परिवार सशक्त होगा और परिवार सशक्त होगा तो राष्ट्र सशक्त बनेगा।

उत्तर प्रदेश में एक ही दिन में 391 रक्तदान शिविर आयोजित हुए, जिनमें 7287 लोगों ने रक्तदान किया। दिल्ली में 3000 करोड़ रुपये का अधोसंरचना पैकेज घोषित हुआ। मध्य प्रदेश में ह्यस्वस्थ नारी, सशक्त परिवारह्ल की पहल शुरू हुई। ये आंकड़े केवल योजनाएँ नहीं बताते, बल्कि यह दर्शाते हैं कि जनता और सरकार के बीच की दूरी कम हो रही है।

गृह मंत्री अमित शाह ने इस अवसर पर कहा—मैं मोदी जी को 24 वर्षों से जानता हूँ। उन्होंने इस पूरे

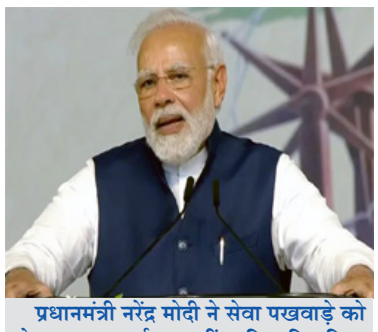

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने सेवा पखवाड़े को केवल एक कार्यक्रम नहीं, बल्कि विकसित भारत के चार स्तंभ—महिला, युवा, गरीब और किसान—को सशक्त करने का अभियान बताया। इस दौरान महिलाओं के लिए स्वास्थ्य शिविर, युवाओं के लिए रक्तदान और पौधारोपण, किसानों के लिए तकनीकी सहयोग और गरीबों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ चलाई गईं। हर कोने से जनता की आवाज गूँजी कि अब सेवा सिर्फ.नारा नहीं, बल्कि उनकी ज़िंदगी में उतर रही हकीकत है।

समय में एक भी छुट्टी नहीं ली। जिनका जीवन ही सेवा है, उनके लिए सेवा पखवाड़ा सबसे बड़ा उत्सव है। जनता के बीच भी इस अभियान ने विश्वास जगाया। हरिद्वार के एक बुजुर्ग ने स्वास्थ्य शिविर में भावुक होकर कहा—बेटा, पहले इलाज के लिए हमें शहर भागना पड़ता था। आज दवाइयाँ हमारे दरवाजे पर आ रही हैं। यही असली सेवा है ह्ल लखनऊ में एक युवती ने पौधारोपण कार्यक्रम के दौरान मुस्कुराकर कहा—ह्लअब लगता है कि स्वच्छता और हरियाली हमारी भी जिम्मेदारी है, सिर्फ सरकार की नहीं।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने सेवा पखवाड़े को केवल एक कार्यक्रम नहीं, बल्कि विकसित भारत के चार स्तंभ—महिला, युवा, गरीब और किसान—को सशक्त करने का अभियान बताया। इस दौरान महिलाओं के लिए स्वास्थ्य शिविर, युवाओं के लिए रक्तदान और पौधारोपण, किसानों के लिए तकनीकी सहयोग और गरीबों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ चलाई गईं। हर कोने से जनता की आवाज गूँजी कि अब सेवा सिर्फ.नारा नहीं, बल्कि उनकी ज़िंदगी में उतर रही हकीकत है।

यह पखवाड़ा प्रधानमंत्री की ह्लजनसेवकह्ल छवि को और गहरा करता है। जब एक किसान कहता है ह्लअगर यह सेवा निरंतर चले तो गाँव बदल जाएगाह्ल और एक छात्र कहता है ह्लहम भी देश बदलने की ताकत रखते हैंह्ल—तो यह बताता है कि सेवा से ही शक्ति का जन्म होता है। सेवा पखवाड़ा केवल भाजपा या मोदी के लिए राजनीतिक पूंजी नहीं, बल्कि पूरे राष्ट्र के लिए आत्मविश्वास और आशा का नया स्रोत बन चुका है। सेवा पखवाड़ा आज एक उत्सव है—सेवा का, सामूहिकता का और आत्मविश्वास का। यह अभियान हमें याद दिलाता है कि राष्ट्र निर्माण केवल नीतियों से नहीं, बल्कि सेवा की निरंतर धारा से होता है। मोदी जी की छवि आज केवल प्रधानमंत्री की नहीं, बल्कि ह्लजनसेवकह्ल की है। जनता भी अब यही कह रही है—ह्लअगर नेता हमारे साथ खड़े हैं, तो हम भी पीछे नहीं हटेंगे ह्ल यही वह मनोबल है जो भारत को उज्ज्वल भविष्य की ओर ले जाएगा।

- पवन शुक्ला

एक दिवस में क्यों बंधे, हिन्दी का अभियान। रचे बसे हर पल रहे, हिन्दी हिन्दुस्तान।।

हिंदी दिवस प्रतिवर्ष 14 सितंबर को मनाया जाता है। यह दिन हमें यह सोचने का अवसर देता है कि हिंदी का स्थान आज हमारे समाज, शिक्षा, साहित्य और तकनीक में कहाँ है। लेकिन एक सवाल हमेशा उठता है—क्या किसी भाषा का सम्मान केवल एक दिन मनाने तक ही सीमित रह जाना चाहिए? भाषा तो जीवन की धारा है, वह हर दिन, हर पल हमारे साथ बहती है। इसीलिए यह दोहा हमें झकझोरता है कि हिंदी का अभियान किसी दिवस में क्यों बंधे? हिंदी को तो भारतवासियों की सांसों में रचा-बसा रहना चाहिए। हिंदी केवल एक भाषा नहीं, बल्कि करोड़ों भारतीयों की पहचान और आत्मा है। यह भाषा हमें जोड़ती है, हमारी संस्कृति को अभिव्यक्त करती है और देश की विविधता में एकता का सूत्र बनाती है। अंग्रेजी, विज्ञान और तकनीक की भाषा हो सकती है, लेकिन हिंदी हमारे हृदय की भाषा है। इसे केवल भाषणों, आयोजनों और सरकारी औपचारिकताओं में सीमित कर देना इसके महत्व को छोटा करना है। आज के दौर में यह और भी आवश्यक हो गया है कि हम हिंदी को एक दिवस तक सीमित न रखें। अंग्रेजी का प्रभुत्व इतना बढ़ गया है कि लोग यह मानने लगे हैं कि सफलता की गारंटी केवल अंग्रेजी सीखने से मिलती है। अभिभावक अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में भेजने को ही भविष्य की सुरक्षा मानते हैं। लेकिन यह एक गहरी भ्रांति है। दुनिया के जिन देशों ने प्रगति की है—जापान, कोरिया, चीन, जर्मनी—उन्होंने अपनी मातृभाषाओं को शिक्षा और विकास का आधार बनाया है। भारत ही एक ऐसा देश है जहां अपनी ही भाषा को हीन दृष्टि से देखा जाता है। यह मानसिकता बदलनी होगी।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) ने इस सोच को सुधारने का प्रयास किया है। इसमें प्रावधान है कि कक्षा 5 तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या स्थानीय भाषा हो। इसका सीधा अर्थ है कि हिंदी भाषी राज्यों में हिंदी के माध्यम से शिक्षा को बढ़ावा मिलेगा। इससे बच्चों की समझ और आत्मविश्वास में वृद्धि होगी। जब शिक्षा अपनी भाषा में होगी तो बच्चे बोझ महसूस नहीं करेंगे और पढ़ाई को आनंदपूर्वक आगे बढ़ाएंगे। इस नीति को सही मायनों में लागू करना हिंदी के अभियान को निरंतरता देगा।

हिंदी दिवस पर आयोजित होने वाले कार्यक्रमों में अक्सर बड़े-बड़े नारे लगाए जाते हैं, भाषण दिए जाते हैं और हिंदी के गौरव का बखान होता है। लेकिन समस्या यह है कि यह सब अगले ही दिन ठंडा पड़ जाता है। हमें यह तय करना होगा कि हिंदी का उपयोग रोजमर्रा की जिंदगी में कैसे बढ़ाया जाए। दफ्तरों में, अदालतों में, तकनीकी संस्थानों में, यहां तक कि सोशल मीडिया पर भी हिंदी का स्थान और सशक्त होना चाहिए। केवल मंच पर हिंदी का गुणगान करने से काम नहीं चलेगा, बल्कि उसे व्यवहारिक जीवन में उतारना होगा।

आज हिंदी इंटरनेट की दुनिया में तेजी से फैल रही है। आंकड़े बताते हैं कि हिंदी कंटेंट उपभोक्ताओं की संख्या अंग्रेजी से कहीं अधिक तेजी से बढ़ रही है। गूगल, फेसबुक, यूट्यूब जैसी कंपनियाँ हिंदी में विशेष रूप से सामग्री उपलब्ध करा रही हैं। इसका अर्थ है कि हिंदी की संभावनाएँ अपार हैं। हमें इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए और हिंदी को आधुनिकता से जोड़ना चाहिए। हिंदी में विज्ञान, तकनीक, प्रबंधन और कानून की शब्दावली विकसित कर इसे समकालीन जरूरतों के अनुरूप बनाना होगा।

हिंदी साहित्य का संसार भी बहुत विशाल और समृद्ध है। कबीर, तुलसी, सूर, प्रेमचंद, निराला, महादेवी वर्मा जैसे अनेकों रचनाकारों ने हिंदी को नई ऊँचाइयों पर पहुँचाया। लेकिन आधुनिक पीढ़ी साहित्य से दूर होती जा रही है। उन्हें यह समझाना होगा कि हिंदी साहित्य में जीवन की गहराइयाँ, समाज की सच्चाइयाँ और मानवीय मूल्यों का अनमोल खजाना है। जब युवा पीढ़ी अपनी भाषा से जुड़ाव महसूस करेगी तभी हिंदी सचमुच हर पल जीने की भाषा बनेगी।

हिंदी का अभियान केवल सरकार की जिम्मेदारी नहीं है। यह हर नागरिक का दायित्व है। जब हम अपने घर में, अपने बच्चों से, अपने साथियों से हिंदी में बातचीत करेंगे, तब यह अभियान स्वतः मजबूत होगा। यदि हम स्वयं ही अंग्रेजी बोलने में गर्व और हिंदी बोलने में संकोच करेंगे तो यह भाषा कैसे फलेगी-फूलेगी? हमें अपनी मानसिकता बदलनी होगी और हिंदी को सम्मान देना होगा।

चुनौतियाँ निश्चित ही कम नहीं हैं। भारत में सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं। हर भाषा का अपना महत्व है और उसे सम्मान मिलना चाहिए। हिंदी को थोपने का नहीं, बल्कि जोड़ने का कार्य करना चाहिए। हिंदी एक संपर्क भाषा के रूप में पूरे देश को जोड़ सकती है, क्योंकि यह सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। लेकिन यह तभी संभव है जब हिंदी का स्वरूप लचीला और समावेशी हो।

हिंदी के प्रचार-प्रसार में प्रौद्योगिकी का भी अहम योगदान हो सकता है। मोबाइल ऐप्स, ऑनलाइन शिक्षा प्लेटफॉर्म, अनुवाद सॉफ्टवेयर और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस हिंदी के प्रसार में क्रांति ला सकते हैं। हिंदी में शोध पत्र, पत्रिकाएँ और अंतरराष्ट्रीय स्तर की किताबें प्रकाशित की जानी चाहिए। यदि हिंदी को ज्ञान और रोजगार से जोड़ा जाएगा तो इसका अभियान स्वतः जीवन का हिस्सा बन जाएगा।

आज की पीढ़ी को यह संदेश देना होगा कि हिंदी पिछड़ेपन की भाषा नहीं है, बल्कि यह उन्नति और आत्मनिर्भरता की भाषा है। हमें यह धारणा तोड़नी होगी कि सफलता केवल अंग्रेजी माध्यम से ही मिलती है। सफलता का आधार मेहनत, ज्ञान और आत्मविश्वास है, और यह अपनी मातृभाषा में भी उतनी ही दृढ़ता से हासिल किया जा सकता है। इसलिए हिंदी दिवस को सिर्फ.एक प्रतीक न मानें। इसे एक प्रेरणा के रूप में लें कि हिंदी हर दिन, हर पल हमारी पहचान का हिस्सा बनी रहे। हमें अपने बच्चों को यह सिखाना होगा कि हिंदी केवल घर की भाषा नहीं, बल्कि ज्ञान और प्रगति की भी भाषा है। हमें यह वातावरण बनाना होगा कि हिंदी में पढ़ना, लिखना और संवाद करना गर्व की बात हो। जब हिंदी का अभियान किसी एक दिवस तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि समाज के हर क्षेत्र में रच-बस जाएगा, तभी यह भाषा सचमुच हिंदुस्तान की आत्मा बन पाएगी।

-प्रियंका सौरभ

टिटहरी: कोई साधारण पक्षी नहीं, बल्कि प्रकृति की मौन प्रहरी

भारत का ग्रामीण जीवन सदियों से प्रकृति के साथ गहरे संवाद में रहा है। खेत, मौसम और जीव-जंतु मिलकर किसान की दिनचर्या और भविष्य दोनों को प्रभावित करते हैं। इन सबके बीच टिटहरी एक ऐसा छोटा-सा पक्षी है, जो सामान्य आँखों से मामूली दिखता है, लेकिन किसानों और लोकजीवन की स्मृतियों में यह मौसम की सटीक भविष्यवाणी करने वाला प्रहरी माना जाता है। यह केवल एक पक्षी नहीं, बल्कि धरती और आकाश के बीच संवाद का माध्यम है, एक मौन दूत है जो संकट और समृद्धि दोनों की आहट पहले ही दे देता है। ग्रामीण अनुभव बताते हैं कि टिटहरी का व्यवहार मौसम और कृषि की दिशा तय करने में अहम संकेत देता है। यदि वह चार अंडे देती है तो चार महीने अच्छी वर्षा होने का विश्वास किया जाता है। जब वह ऊँचाई पर अंडे देती है, तो लोग मानते हैं कि सामान्य से अधिक वर्षा होगी। यदि कभी वह मजबूरी में छत या पेड़ पर अंडे दे, तो यह भीषण बाढ़ का संकेत माना जाता है। वहीं, यदि वह अंडे न दे तो यह सबसे डरावनी स्थिति होती है, क्योंकि लोग इसे अकाल का दूत मानते हैं। किसान कहते हैं कि जिस खेत में टिटहरी अंडे देती है, वह खेत खाली नहीं रहता। वहाँ फसल जरूर होती है। इस तरह यह पक्षी न केवल वर्षा और मौसम से जुड़े संकेत देता है बल्कि उपजाऊपन और अकाल जैसी चरम स्थितियों की चेतावनी भी बन जाता है।

लोकजीवन में एक और मान्यता है कि टिटहरी का मृत शरीर कुरुक्षेत्र के अलावा कहीं दिखाई नहीं देता। चाहे यह तथ्य हो या प्रतीकात्मक कल्पना, लेकिन यह विश्वास उसे जीवन और अस्तित्व की रक्षा का प्रतीक बना देता है। टिटहरी को देखने वाला किसान समझ जाता है कि यह पक्षी उसकी मिट्टी, फसल और भविष्य का पहरेदार है। यही कारण है कि ग्रामीण लोकगीतों और कहावतों में भी टिटहरी का उल्लेख मिलता है। यह उन जीवों में से है जिनकी गतिविधियों पर पीढ़ियाँ भरोसा करती रही हैं। अब सवाल उठता है कि जब विज्ञान मौसम की भविष्यवाणी के लिए उपग्रह, राडार और कंप्यूटर मॉडल जैसे अत्याधुनिक साधन लेकर आया है, तब टिटहरी जैसे पक्षियों की भूमिका क्या रह जाती है। वास्तव में इसका उत्तर यही है कि विज्ञान और लोकअनुभव एक-दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं। वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो टिटहरी जैसे पक्षी पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। हवा की नमी, तापमान का उतार-चढ़ाव, भूमि की नमी, जल स्तर का बढ़ना या घटना झ इन सबका असर उनके व्यवहार पर पड़ता है। यही कारण है कि वैज्ञानिक भाषा में इन्हें ह्लइकोसिस्टम इंडिकेटरह्ल कहा जाता है। यानी ऐसे जीव जो अपने आचरण के माध्यम से हमें पर्यावरणीय बदलावों की समय रहते जानकारी दे देते हैं।

हमारे पूर्वजों ने विज्ञान के औजारों का सहारा लिए बिना ही इन संकेतों को अनुभव के आधार पर समझा और उनका लाभ उठाया। सदियों से किसान टिटहरी की गतिविधियों पर नजर रखते आए हैं। अगर वह अंडे देने का समय टाल दे तो किसान पहले से ही सतर्क हो जाते थे। यदि वह जमीन छोड़कर ऊँचाई पर चली जाए, तो वे अधिक वर्षा और संभावित जलभराव को लेकर चौकन्ने हो जाते थे। इस प्रकार लोकानुभव ने जो बातें कही हैं, वे वास्तव में वैज्ञानिक कारणों से जुड़ी हुई हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि किसानों ने इन्हें अपनी भाषा और प्रतीकों में व्यक्त किया।

टिटहरी कोई साधारण पक्षी नहीं, बल्कि प्रकृति का मौन प्रहरी है। किसान उसके अंडों की संख्या, स्थान और समय देखकर बारिश, बाढ़ या अकाल का अनुमान लगाते रहे हैं। विज्ञान भी मानता है कि ऐसे पक्षी ह्लइकोसिस्टम इंडिकेटरह्ल होते हैं, जो पर्यावरणीय बदलावों का पहले से संकेत दे देते हैं। आज शहरीकरण और रसायनों के प्रयोग से इनका आवास खतरे में है। यदि हम टिटहरी जैसे पक्षियों की चेतावनी अनसुनी कर देंगे, तो भविष्य में आपदाओं के प्रति हमारी संवेदनशीलता और भी घट जाएगी। इसलिए जरूरी है कि हम इन्हें बचाएँ और इनके संदेश को गंभीरता से सुनें।

आज जब हम शहरीकरण और औद्योगिकीकरण की चमक में डूबे हैं, तब सबसे बड़ा संकट यही है कि हमने प्रकृति की इस मौन भाषा को सुनना लगभग छोड़ दिया है। शहरों में रहने वाला इंसान यह नहीं जानता कि कब कोई पक्षी अपनी आदत बदल रहा है, कब उसकी संख्या घट रही है या कब उसका स्वर बदल रहा है। यही लापरवाही हमें अचानक आने वाली आपदाओं के सामने असहाय बना देती है। यदि हम टिटहरी और अन्य पक्षियों के संदेशों को गंभीरता से लें तो आपदा प्रबंधन की हमारी क्षमता कई गुना बढ़ सकती है।

टिटहरी के बारे में यह भी कहा जाता है कि यह पक्षी खेत को कभी खाली नहीं छोड़ता। उसका वहाँ अंडे देना किसानों के लिए आश्वासन का प्रतीक है। यह विश्वास अपने आप में गहरा संदेश है कि प्रकृति मनुष्य को निराश नहीं करती, बशर्ते हम उसका सम्मान करें। लेकिन जब हम प्रकृति के नियम तोड़ते हैं, उसके साथ छेड़छाड़ करते हैं, तब उसके प्रहरी पक्षी भी अपने संकेत बदलने को मजबूर हो जाते हैं। यही वजह है कि कई बार बाढ़ या अकाल जैसी स्थिति का पूर्वाभास हमें टिटहरी के व्यवहार से पहले ही मिल जाता है।

इस पक्षी का महत्व केवल ग्रामीण जीवन तक सीमित नहीं है। यह हमें याद दिलाता है कि जीवन का हर रूप पर्यावरण के विशाल ताने-बाने से जुड़ा है। जब एक छोटा-सा पक्षी अपने अंडों के जरिए भविष्य की तस्वीर दिखा सकता है, तब यह हमारे लिए चेतावनी भी है कि हम इस तंत्र के साथ खिलवाड़ न करें। विज्ञान भी यही कहता है कि पर्यावरण में सूक्ष्मतम बदलाव का सबसे पहले असर पक्षियों और छोटे जीवों पर दिखाई देता है। यदि हम समय रहते उन्हें सुन लें, तो बड़ी त्रासदियों से बच सकते हैं।

उचित है कि टिटहरी कोई साधारण पक्षी नहीं है। यह हमें यह समझाती है कि ज्ञान केवल प्रयोगशालाओं और उपग्रहों से नहीं आता, बल्कि खेत-खलिहानों और जीव-जंतुओं के आचरण से भी आता है। आधुनिक विज्ञान जहाँ आँकड़ों और तकनीक पर आधारित है, वहीं टिटहरी सहज संवेदना और प्राकृतिक जुड़ाव पर आधारित चेतावनी देती है। दोनों के बीच पुल बनाना ही आज की सबसे बड़ी जरूरत है। आज की स्थिति में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न संरक्षण का है। यदि टिटहरी जैसे पक्षी हमारे बीच से लुप्त हो जाएँगे तो न केवल लोकविश्वास टूट जाएगा, बल्कि पर्यावरणीय चेतावनी प्रणाली का एक अहम हिस्सा भी खो जाएगा। इसके संरक्षण के लिए हमें खेतों में अत्यधिक कीटनाशकों का उपयोग कम करना होगा, प्राकृतिक आवासों को सुरक्षित रखना होगा और जलस्रोतों को बचाना होगा। यह केवल एक पक्षी का संरक्षण नहीं होगा, बल्कि अपने भविष्य और अस्तित्व की रक्षा भी होगी।

निष्कर्ष यही है कि जहाँ विज्ञान आँकड़ों और मशीनों पर भरोसा करता है, वहीं टिटहरी जैसी पक्षियाँ सहज चेतावनी देती हैं। विज्ञान देर से अलर्ट करता है, लेकिन टिटहरी पहले से सावधान कर देती है। हमारे लिए सबसे बड़ी चुनौती यही है कि हम इस मौन संवाद को सुनें और उसके अनुसार कदम उठाएँ। यदि हमने इस आवाज को नजरअंदाज किया, तो आने वाले समय में न केवल टिटहरी गायब हो जाएगी, बल्कि उसका दिया हुआ संदेश भी हमारे जीवन से खो जाएगा।

- डॉ. सत्यवान सौरभ

भारत रत्न से सम्मानित होने वाली पहली संगीतकार सुब्बुलक्ष्मी

तमिलनाडु की एक भारतीय कर्नाटक गायिका थीं। वह भारत के सर्वोच्च नागरिक सम्मान भारत रत्न से सम्मानित होने वाली पहली संगीतकार थीं वह 1974 में रेमन मैग्सेसे पुरस्कार प्राप्त करने वाली पहली भारतीय संगीतकार हैं, जिसमें प्रशस्ति पत्र पढ़ा गया है ₹सटीक शुद्धतावादी श्रीमति एमएस सुब्बुलक्ष्मी को दक्षिण भारत की कर्नाटक परंपरा में शास्त्रीय और अर्ध-शास्त्रीय गीतों के प्रमुख प्रतिपादक के रूप में स्वीकार करते हैं। वह पहली भारतीय थीं जिन्होंने 1966 में संयुक्त राष्ट्र महासभा में प्रदर्शन किया था। श्रीमती सुब्बुलक्ष्मी का जन्म 16 सितंबर 1916को तमिलनाडु के मदुरै शहर में हुआ। आप ने छोटी आयु से संगीत का शिक्षण आरंभ किया और दस साल की उम्र में ही अपना पहला डिस्क रिकॉर्ड किया। इसके बाद आपनी मा शेम्मंगुडी श्रीनिवास अय्यर से कर्णाटक संगीत में, तथा पंडित नारायणराव व्यास से हिंदुस्तानी संगीत में उच्च शिक्षा प्राप्त की। आपने सत्रह साल की आयु में चेन्नई ही विख्यात 'म्यूज़िक अकाडमी' में संगीत कार्यक्रम पेश किया। इसके बाद आपने मलयालम से लेकर पंजाबी तक भारत की अनेक भाषाओं में गीत रिकॉर्ड किये। श्रीमती सुब्बुलक्ष्मी ने कई फि ल्मों में भी अभिनय किया। इनमें सबसे यादगार है 1945 के मीरा फि ल्म में आपकी मुख्य भूमिका। यह फि ल्म तमिल तथा हिन्दी में बनाई गई थी और इसमें आपने कई प्रसिद्ध मीरा भजन गाए। अनेक मशहूर संगीतकारों ने श्रीमती सुब्बुलक्ष्मी की कला की तारीफ की है। लता मंगेशकर ने आपको 'तपस्विनी' कहा, उस्ताद बडे गुलाम अली खां ने आपको 'सुस्वरलक्ष्मी' पुकारा, तथा किशोरी आमोनकर ने आपको 'आठ्वां सुर' कहा, जो संगीत के सात सुरों से ऊंचा है।

भारत के कई माननीय नेता, जैसे महात्मा गांधी और पंडित नेहरु भी आपके संगीत के प्रशंसक थे। एक अवसर पर महात्मा गांधी ने कहा कि अगर श्रीमती सुब्बुलक्ष्मी 'हरि, तुम हरो जन की भीर' इस मीरा भजन को गाने के बजाय बोल भी दें, तब भी उनको वह भजन किसी और के गाने से अधिक सुरीला लगेगा। एम.एस.सुब्बालक्ष्मी को कला क्षेत्र में पद्म भूषण से १९५४ में सम्मानित किया गया। श्रीमती सुब्बुलक्ष्मी का देहांत 2004 में चेन्नैई में हुआ।

सरलता और संघर्ष की आयरन लेडी, जहाँ माँ का स्नेह, समाज की चेतना और स्त्री-संकल्प की प्रतिमूर्ति साथ-साथ चलती रही।

रसोई से संपादक तक : 'आयरन लेडी' संतोष वशिष्ठ की अमर गाथा

कभी-कभी जीवन हमें ऐसे व्यक्तित्वों से मिलाता है, जो साधारण दिखाई देते हैं, परंतु भीतर से असाधारण ऊर्जा और सामर्थ्य से भरे होते हैं। वे लोग किसी मंच या रोशनी के सहारे नहीं चमकते, बल्कि अपने कर्मों की गरिमा से स्वयं दीप्त हो उठते हैं। हरियाणा की धरती पर जन्मी संतोष वशिष्ठ जी ऐसा ही एक नाम थीं। लोग उन्हें स्नेह और श्रद्धा से आयरन लेडी कहते थे। लेकिन यह उपाधि उनके कठोर स्वभाव की नहीं, बल्कि उनके अदम्य साहस और अटल सिद्धांतों की पहचान थी। संतोष जी का जीवन जितना सरल दिखता है, उतना ही गहन और प्रेरणादायी है। वे उन दुर्लभ स्त्रियों में से थीं जिन्होंने गृहस्थी की जिम्मेदारियों और सामाजिक कर्तव्यों को एक साथ निभाया। उनकी वाणी मधुर, व्यवहार विनम्र और स्वभाव सौम्य था, लेकिन जब सिद्धांतों की बात आती तो वे चट्टान की तरह अडिग हो जातीं। उनके व्यक्तित्व का यही द्वंद्व उन्हें असाधारण बनाता था। उनका जीवन इस सत्य की गवाही देता है कि महानता का आधार भव्य मंच या ऊँचे पद नहीं होते, बल्कि आत्मबल और निष्ठा होती है। उन्होंने अपने परिवार, समाज और पत्रकारिता—तीनों क्षेत्रों को समान महत्व दिया और हर जगह अपनी छाप छोड़ी।

रसोई से संपादक तक की यात्रा

संतोष जी की जीवन यात्रा साधारण नारी की तरह ही रसोई से प्रारंभ हुई। वे भोजन बनातीं, घर सँभालतीं, परिवार की जिम्मेदारियाँ निभातीं। लेकिन नियति ने उन्हें केवल गृहस्थी तक सीमित रहने नहीं दिया। परिस्थितियों ने, समय ने और उनके भीतर के संकल्प ने उन्हें उस राह पर खड़ा कर दिया जहाँ उन्हें समाज के लिए लिखना और बोलना पड़ा। दैनिक चेतना के माध्यम से उन्होंने पत्रकारिता की दुनिया में कदम रखा। इस अखबार की नींव उनके पति, स्व. देवव्रत वशिष्ठ ने रखी थी। परंतु इसकी निरंतरता और मजबूती के पीछे संतोष जी का योगदान किसी स्तंभ से कम नहीं था। वे रसोई के काम से उठकर संपादकीय मेज पर बैठतीं और समाज की धड़कनों को शब्दों में ढाल देतीं। यही वह सफर था जिसे लोग सम्मानपूर्वक ह्यरस-ोई से संपादक तकह्न कहते हैं। उनके लिए पत्रकारिता परिवार की तरह अपनाया और उस पर विश्वास किया।

वशिष्ठ सदन : विचारों का संगम

संतोष जी का घर, वशिष्ठ सदन, वर्षों तक हरियाणा की राजनीति और समाज का केंद्र बना रहा। यह घर नेताओं, विचारकों और समाजसेवियों के लिए किसी खुले मंच जैसा था। यहाँ हर विचारधारा के लोग आते, बैठते, चर्चा करते और दिशा पाते। इस पूरे वातावरण को संतुलन में रखने वाली शक्ति थीं—संतोष जी। वे सभी का आदर करतीं, सबकी सुनतीं, परंतु स्वयं निष्पक्ष और सिद्धांतनिष्ठ बनी रहतीं। उनके सहज स्वभाव और मृदु व्यवहार के कारण हर आगंतुक उनसे आत्मीयता का अनुभव करता। उन्होंने यह साबित कर दिया कि घर केवल चार दीवारों का नाम नहीं, बल्कि समाज का आईना भी बन सकता है।

चेतना परिवार की माँ

संतोष जी केवल अपने बच्चों की माँ नहीं थीं। दैनिक चेतना के हर सहयोगी, हर पत्रकार, हर कर्मचारी को वे अपने परिवार का हिस्सा मानतीं। उन्हें प्रोत्साहित करना, उनकी कठिनाइयों में साथ खड़ा होना और उनके लिए बेहतर अवसर उपलब्ध कराना—ये सब उनके स्वभाव का हिस्सा था। वे पत्र-ाकारिता को एक सेवा मानती थीं, और इसी दृष्टि से हर कार्यकर्ता को प्रेरित करती थीं। यही कारण था कि चेतना परिवार उन्हें माँ की तरह मानता रहा।

आयरन लेडी की छवि

ह्यआयरन लेडीह्न कहना आसान है, परंतु इसका अर्थ समझना कठिन। संतोष वशिष्ठ ने यह उपाधि अपने कठोर हृदय से नहीं, बल्कि अपने अडिग इरादों से अर्जित की। वे भीतर से कोमल थीं, रिश्तों को सँभालना जानती थीं, लेकिन जब समय आया तो कि-सी दबाव के आगे झुकीं नहीं। पत्रकारिता की दुनिया में आर्थिक संकट, सामाजिक विरोध और राजनीतिक दबाव सामान्य बात है। परंतु संतोष जी ने हर परिस्थिति का सामना साहस के साथ किया। वे जानती थीं कि सच बोलना कभी आसान नहीं होता, लेकिन वे सच से पीछे नहीं हटीं। यही साहस उन्हें औरों से अलग करता है।

सरलता की शक्ति

प्रभावित करता था।

वे कहा करती थीं रिश्तों की असली शिक्षा किताबों से नहीं, घर के आँगन से मिलती है। पहले अपने खून के रिश्तों को सँभालो, तभी समाज को भाईचारे की सीख देने का हक बनता है। यह वाक्य उनके जीवन का सार है। उन्होंने इसे केवल कहा ही नहीं, बल्कि जिया भी।

एक विरासत

आज जब संतोष वशिष्ठ हमारे बीच नहीं हैं, तो उनकी स्मृतियाँ और शिक्षाएँ हमारे पास धरोहर की तरह हैं। वे हमें यह सिखाकर गईं कि स्त्री यदि ठान ले तो घर की दीवारों से बाहर निकलकर पूरे समाज को दिशा दे सकती है। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि पत्रकारिता केवल कागज पर छपने वाली खबरों का नाम नहीं, बल्कि समाज के विचार और भविष्य की धड़कन है। उनकी विरासत केवल अखबार तक सीमित नहीं है। उनकी विरासत है—सत्यनिष्ठा, साहस, सरलता और सेवा। यह ऐसी धरोहर है जिसे कोई समय नहीं मिटा सकता।

अमर स्मृतियाँ

संतोष वशिष्ठ का जीवन हमें यह समझाता है कि महानता पद या संपत्ति से नहीं, बल्कि त्याग और निष्ठा से आती है। उन्होंने अपने जीवन से यह संदेश दिया कि संघर्ष और सेवा ही सच्ची शक्ति है। वे केवल एक स्त्री, पत्नी या माँ नहीं थीं। वे एक आंदोलन थीं, एक विचार थीं, एक चेतना थीं। उनका जाना एक युग का अंत है, पर उनकी स्मृतियाँ अमर हैं। सचमुच, संतोष वशिष्ठ जैसी महिलाएँ कभी जाती नहीं। वे समाज की चेतना में सदा जीवित रहती हैं, प्रेरणा देती रहती हैं और हमें बार-बार याद दिलाती हैं कि—

आयरन लेडी
वही होती है,
जो मुस्कान के साथ
संघर्ष झेलकर भी
समाज को
रोशनी देती है।

-प्रियंका सौरभ

संतोष वशिष्ठ जी का जीवन संघर्ष और सरलता की अनोखी मिसाल है। उन्होंने रसोई से अपनी यात्रा शुरू की और दैनिक चेतना की संपादक बनकर समाज को दिशा दी।

मृदुभाषी, सौम्य और आत्मीय, फिर भी सिद्धांतों पर अडिग—यही उनकी असली पहचान थी। वशिष्ठ सदन को उन्होंने राजनीति और समाज का केंद्र बनाया और चेतना परिवार को माँ की तरह सँभाला। वे सचमुच हरियाणा की ह्यआयरन लेडीह्न थीं, जिनकी स्मृतियाँ और शिक्षाएँ हमें सदैव प्रेरित करती रहेंगी।

अध्ययन बताते हैं कि प्रसव के बाद महिलाओं की देखभाल करने में सास की तुलना में उनकी अपनी माँ कहीं अधिक सक्रिय और संवेदनशील रहती हैं। लगभग 70 प्रतिशत प्रसूताओं को नानी से बेहतर सहयोग मिला, जबकि मात्र 16 प्रतिशत को सास से सहायता मिली। यह बदलाव संयुक्त परिवारों के टूटने और आधुनिक सोच का परिणाम है। नानी का भावनात्मक जुड़ाव और मातृत्व का अनुभव बेटी के लिए सहारा बनता है। हालांकि सास की भूमिका कमजोर पड़ना पारिवारिक संतुलन के लिए चुनौती है। जरूरी है कि माँ और सास दोनों मिलकर जिम्मेदारी निभाएँ।

माँ की गोद में मिलती सुरक्षा, सास की भूमिका पर उठे सवाल

भारतीय समाज में परिवार की भूमिका जीवन के हर पड़ाव पर महत्वपूर्ण होती है। जब घर में नया जीवन जन्म लेता है, तब यह जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है। प्रसव एक ऐसा समय है जब महिला शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रूप से बेहद कमजोर होती है। उसे सिर्फ चिकित्सकीय सहायता ही नहीं, बल्कि गहरे स्तर पर देखभाल, सहारा और संवेदनशीलता की जरूरत होती है। परंपरागत रूप से यह जिम्मेदारी संयुक्त परिवारों में सास की मानी जाती थी, लेकिन बदलते दौर और सामाजिक संरचना के कारण यह भूमिका अब धीरे-धीरे माँ यानी नानी की ओर स्थानांतरित हो रही है। हाल ही में किए गए एक अध्ययन में यह स्पष्ट हुआ है कि प्रसव के बाद महिलाओं को अपनी सास की तुलना में अपनी माँ से कहीं अधिक देखभाल और सहयोग मिलता है। यह तथ्य कई स्तरों पर सोचने को मजबूर करता है। एक ओर यह माँ और बेटी के रिश्ते की गहराई और भावनात्मक मजबूती को दर्शाता है, वहीं दूसरी ओर यह सवाल भी उठाता है कि सास जैसी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली महिला इस प्रक्रिया में पीछे क्यों रह गई है। अध्ययन में पाया गया कि प्रसवोत्तर देखभाल में लगभग 70 प्रतिशत महिलाओं को उनकी अपनी माँ से सहयोग मिला, जबकि मात्र 16 प्रतिशत महिलाओं की देखभाल उनकी सास ने की। यह आ-ँकड़ा अपने आप में बहुत कुछ कह जाता है।

बेटी और माँ का रिश्ता हमेशा से भरोसे और आत्मीयता पर आधारित रहा है। प्रसव के बाद महिला अपने जीवन के सबसे नाजुक दौर से गुजरती है। उस-ाका शरीर थका हुआ और कमजोर होता है, मानसिक रूप से वह असुरक्षा और चिंता का सामना करती है। ऐसे समय में वह सबसे पहले अपनी माँ के पास सहजता से जाती है। माँ न केवल उसकी तकलीफ को तुरंत समझती है बल्कि धैर्य और प्यार से उसका मनोबल भी बढ़ाती है। हर माँ ने मातृत्व का अनुभव किया होता है, इसलिए उसे पता होता है कि उसकी बेटी किन शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं से गुजर रही है। यही वजह है कि बेटी अपनी असली माँ की देखभाल को सबसे भरोसेमंद मानती है। इसके विपरीत सास-बहू का रिश्ता भारतीय समाज में अक्सर औपचारिकताओं और अपेक्षाओं से घिरा होता है। बहू अपनी सास के सामने उतनी सहजता महसूस नहीं कर पाती। कई बार पीढ़ियों का अंतर भी इस दूरी को और बढ़ा देता है। सास का सोचने का तरीका पुराने अनुभवों पर आधारित होता है, जबकि आज की पीढ़ी की महिलाएँ आधुनिक चिकित्सा और नई जानकारी पर अधिक भरोसा करती हैं। जब बहू को लगे कि उसकी जरूरतों को पूरी तरह समझा नहीं जा रहा है, तो वह अपनी माँ की ओर झुक जाती है। यही वजह है कि प्रसव के समय सास की तुलना में नानी की भूमिका अधिक अहम दिखाई देती है।

इस बदलाव के पीछे एक और बड़ा कारण है संयुक्त परिवारों का टूटना और एकल परिवारों का बढ़ना। पहले प्रसव के समय बहू अपने ससुराल में ही रहती थी और पूरे परिवार की महिलाएँ उसकी देखभाल करती थीं। सास इस देखभाल की मुख्य जिम्मेदार मानी जाती थी। लेकिन अब परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। अधिकतर बेटियाँ प्रसव के समय मायके चली जाती हैं। वहाँ नानी स्वाभाविक रूप से जिम्मेदारी संभाल लेती है। यह प्रथा समाज में इतनी गहराई से जड़ पकड़ चुकी है कि अब यह लगभग सामान्य मान ली जाती है। यह बदलाव कई दृष्टियों से सकारात्मक भी है। प्रसव के बाद महिला को भावनात्मक सुरक्षा मिलना बहुत जरूरी है। जब उसके पास उसकी अपनी माँ होती है, तो उसे मानसिक सुकून मिलता है। कई शोध बताते हैं कि प्रसवोत्तर अवसाद का खतरा उन महिलाओं में कम होता है जिन्हें अपनी माँ से पर्याप्त सहयोग मिलता है। नानी के अनुभव का लाभ शिशु को भी मिलता है। शिशु को समय पर स्तनपान कराना, उसकी सफाई और टीकाकरण जैसे छोटे-छोटे लेकिन महत्वपूर्ण कामों में नानी की भूमिका बहुत कारगर साबित होती है। इस दृष्टि से देखा जाए तो यह प्रवृत्ति माँ और शिशु दोनों के स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है। लेकिन इस तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। जब सास की भूमिका कमजोर पड़ती है तो पारिवारिक संतुलन प्रभावित होता है। बहू और सास के रिश्ते में दूरी और बढ़ सकती है। यह दूरी सिर्फ देखभाल तक सीमित नहीं रहती बल्कि परिवार की सामंजस्यपूर्ण संस्कृति पर भी असर डाल सकती है। आखिरकार सास भी खुद कभी इस प्रक्रिया से गुजरी होती है और उसके अनुभव की अहमियत को पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता। अगर उसका अनुभव और स्नेह इस प्रक्रिया में शामिल न हो, तो यह न केवल उसके लिए निराशाजनक होता है बल्कि बहू और शिशु दोनों उस सहयोग से वंचित रह जाते हैं जो उन्हें अतिरिक्त सुरक्षा दे सकता है। यहाँ यह समझना जरूरी है कि प्रसवोत्तर देखभाल किसी एक व्यक्ति की जिम्मेदारी नहीं है। यह पूरे परिवार की सामूहिक जिम्मेदारी है। अगर माँ और सास दोनों मिलकर इस दायित्व को निभाएँ, तो महिला को दोगुना सहयोग मिलेगा। यह स्थिति न केवल प्रसूता महिला के लिए बेहतर होगी बल्कि शिशु के लिए भी अधिक लाभकारी होगी। इसके अलावा, परिवार के भीतर रिश्तों की मिठास और विश्वास भी बढ़ेगा।

समाज को भी यह समझना होगा कि प्रसव जैसे समय में महिला को सिर्फ शारीरिक मदद ही नहीं बल्कि मानसिक सहारा और भावनात्मक सहयोग भी चाहिए। अगर महिला को लगे कि उसकी सास भी उसके दर्द और जरूरतों को समझती है, तो उसका आत्मविश्वास और बढ़ेगा। इसी तरह, अगर सास-बहू के बीच संवाद और विश्वास का रिश्ता मजबूत हो, तो देखभाल का संतुलन अपने आप स्थापित हो जाएगा।

आज जब स्वास्थ्य सेवाओं और सरकारी योजनाओं की पहुँच बढ़ रही है, तब परिवार की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। अस्पताल और डॉक्टर अपना काम कर सकते हैं, लेकिन प्रस-ावोत्तर देखभाल का असली दायित्व घर और परिवार पर ही रहता है। परिवार के भीतर यह जिम्मेदारी अगर संतुलित ढंग से बाँटी जाए तो इसका लाभ सीधा माँ और शिशु दोनों को मिलेगा। इसलिए यह आवश्यक है कि इस विषय पर जागरूकता बढ़ाई जाए। परिवारों को समझाया जाए कि प्रसवोत्तर देखभाल किसी प्रतिस्पर्धा का विषय नहीं है—यह माँ बनाम सास की लड़ाई नहीं है। बल्कि यह माँ और सास दोनों का संयुक्त दायित्व है। दोनों का अनुभव और स्नेह मिलकर प्रसूता महिला को वह सुरक्षा प्रदान कर सकता है, जिसकी उसे सबसे अधिक आवश्यकता होती है।

सास से ज्यादा माँ की देखभाल बेहतर यह शीर्षक समाज में एक बदलते रुझान का दर्पण है। यह रुझान बताता है कि प्रसव जैसे संवेदनशील समय में महिला अपनी असली माँ को ज्यादा भरोसेमंद और सहयोगी मानती है। लेकिन आदर्श स्थिति वही होगी जब सास और माँ दोनों मिलकर यह जिम्मेदारी निभाएँ। यह न केवल प्रसूता महिला के स्वास्थ्य और मानसिक शांति के लिए अच्छा होगा, बल्कि शिशु की परवरिश और परिवारिक रिश्तों के सामंजस्य के लिए भी लाभकारी सिद्ध होगा। आखिरकार, स्वस्थ माँ और स्वस्थ शिशु ही स्वस्थ समाज की नींव रखते हैं। **प्रियंका सौरभ**

महिला निदेशक और विश्व सिनेमा का पुनर्लेखन

विजय गर्ग

महिला निर्देशकों की बढ़ती उपस्थिति का विश्व सिनेमा पर गहरा और परिवर्तनकारी प्रभाव पड़ा है, जो स्थापित मानदंडों को चुनौती देता है, कहानी कहने में विविधता लाता है, और नए दृष्टिकोणों की पेशकश करता है जो पहले कम प्रतिनिधित्व किए गए थे। यह आंदोलन केवल एक आँकड़ा बढ़ाने के बारे में नहीं है; यह उन कहानियों में एक मौलिक बदलाव के बारे में है जो उन्हें बताती हैं, जो उन्हें बताती हैं, और उन्हें वैश्विक दर्शकों द्वारा कैसे माना जाता है। विविध नैरेटिव और परिप्रेक्ष्य दशकों से, सिनेमाई परिदृश्य को बड़े पैमाने पर पुरुष टकटकी द्वारा आकार दिया गया था - नारीवादी फिल्म सिद्धांत का एक शब्द जिस तरह से महिलाओं को अक्सर पुरुष दर्शकों की खुशी के लिए वस्तुओं के रूप में चित्रित किया जाता है। महिला निर्देशकों ने सक्रिय रूप से इसे खत्म करने के लिए काम किया है, ₹महिला टकटकीह्न की शुरूआत की है जो महिला विषय, अंतर और एजेंसी पर केंद्रित है। इसके कारण फिल्में बनी हैं:

गहराई और जटिलता के साथ केंद्र महिला नायक: जेन कैंपियन (द पियानो, द पावर ऑफ द डॉग), सोफिया कोपोला (लॉस्ट इन ट्रांसलेशन, द वर्जिन सुसाइड), और सेलाइन साइसम्मा (पोर्ट्रेट ऑफ ए लेडी ऑन फायर) जैसे निर्देशक शिल्प कथाएँ जहां महिलाओं को पुरुषों के साथ उनके संबंधों द्वारा परिभाषित नहीं किया गया है, लेकिन पूर्ण, बहुआयामी चरित्र अपनी इच्छाओं, पहचान और संघर्षों की खोज कर रहे हैं।

सहानुभूति, पहचान और सामाजिक मुद्दों के विषयों का अन्वेषण करें: भारत में गौरी शिंदे (इंग्लिश विंग्लिश) और जोया अख्तर (गली बॉय) के अंतरंग नाटकों से लेकर संयुक्त राज्य अमेरिका में अवा डुवर्ने (13 वीं) के सामाजिक रूप से जागरूक वृत्तचित्रों तक, महिला निदेशक अक्सर अपने काम के प्रति एक अनूठी संवेदनशीलता लाते हैं, लिंग, नस्ल, वर्ग और सामाजिक न्याय के विषयों को संबोधित करते हैं।

चुनौती शैली सम्मेलनों: महिला निर्देशकों ने सभी शैलियों में काम करने की अपनी क्षमता का प्रदर्शन किया है, एक्शन और हॉरर से लेकर कॉमेडी और ड्रामा तक, जबकि अक्सर पारंपरिक ट्रॉप्स को कम करते हैं। सर्वश्रेष्ठ निर्देशक के लिए अकादमी पुरस्कार जीतने वाली पहली महिला कैथरीन बिगेलो एक प्रमुख उदाहरण है, द हर्ट लॉकर जैसी एक्शन और युद्ध फिल्मों में अपने प्रशंसित काम के साथ। स्वतंत्र और विश्व सिनेमा का उदय जबकि महिलाएं मूक युग के बाद से फिल्म निर्माण में शामिल रही हैं - ऐलिस गाय-ब्लाचे जैसे अग्रदूतों के साथ - उनके अवसर ऐतिहासिक रूप से पुरुष-प्रधान स्टूडियो प्रणाली में सीमित थे। 20 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में स्वतंत्र फिल्म आंदोलनों के उदय ने महिलाओं को उन कहानियों का प्रयोग करने और बताने के लिए एक महत्वपूर्ण मंच प्रदान किया जो प्रमुख स्टूडियो द्वारा ग्रीनलिट नहीं हो सकती थीं। इस बदलाव की भूमिका फिल्म निमार्ताओं के करियर में थी।

एग्नेस वर्दा: फ्रेंच न्यू वेव की एक प्रमुख आकृति, 5 से 7 मिश्रित वृत्तचित्र और कथा से क्लेओ जैसी उनकी फिल्में, एक मानवतावादी और अक्सर आत्मकथात्मक परिप्रेक्ष्य की पेशकश करती हैं जो क्रांतिकारी थीं।

चैंटल अकरमैन: अपने न्यूनतम और अत्यधिक औपचारिक दृष्टिकोण के लिए जाना जाता है, अकरमैन की फिल्में, विशेष रूप से जीन डायलमैन, 23, क्वाई डु कॉमर्स, 1080 ब्रुक्सलेस, रोजमरी की जिंदगी और पालतू जानवरों के कट्टरपंथी पुनर्निर्माण के लिए नारीवादी सिनेमा के स्थलों को माना जाता है। आज, यह प्रवृत्ति दुनिया भर की महिला निर्देशकों की एक नई पीढ़ी के साथ जारी है जो अंतरराष्ट्रीय प्रशंसा प्राप्त कर रही हैं। उदाहरण के लिए, दक्षिण कोरिया से बोंग जून-हो या मेक्सिको से गिलर्मो डेल टोरो जैसे निर्देशक एक व्यापक घटना का हिस्सा हैं जहां विविध संस्कृतियों की कहानियों को वैश्विक दर्शक मिल रहे हैं, और महिलाएं उस लहर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। ईरान की एना लिली अमीरपोर (ए गर्ल वॉक होम अलोन एट नाइट), ट्यूनीशिया के कौथर बेन हनिया (द मैन हू सोल्ड हिज स्किन) जैसे फिल्म निमार्ता और भारत की किरण राव (लापटा लेडीज) यह साबित कर रही हैं कि सांस्कृतिक रूप से विशिष्ट कहानियां सार्वभौमिक रूप से गूंज सकती हैं। चुनौतियां और निरंतर विकास प्रगति के बावजूद, महत्वपूर्ण चुनौतियां बनी हुई हैं। अध्ययनों से लगातार पता चलता है कि महिलाओं को अभी भी शीर्ष निर्देशन नौकरियों में कम प्रतिनिधित्व दिया जाता है, विशेष रूप से उच्च बजट वाली फिल्मों पर । महिलाओं द्वारा निर्देशित फिल्मों को अक्सर उनके पुरुष-निर्देशित समकक्षों की तुलना में बजटीय और बॉक्स ऑफिस असमानताओं का सामना करना पड़ता है। हालांकि, बातचीत शिफ्ट हो रही है। वकालत के प्रयासों और स्ट्रीमिंग प्लेटफार्मों के उदय के साथ मिलकर महिला निर्देशकों की बढ़ी दृश्यता नए अवसर पैदा कर रही है। फिल्म फेस्टिवल और उद्योग पुरस्कार तेजी से महिलाओं के काम को पहचान रहे हैं और जश्न मना रहे हैं, और ग्रेटा जर्विग की बार्बी जैसी फिल्मों की सफलता ने प्रदर्शित किया है कि महिला-निर्देशित कहानियां समीक्षकों द्वारा प्रशंसित और व्यावसायिक रूप से विजयी दोनों हो सकती हैं। अंत में, महिला निर्देशक सिनेमा के इतिहास में सिर्फ एक फुटनोट नहीं हैं; वे सक्रिय रूप से इसके भविष्य को फिर से लिख रहे हैं। वैकल्पिक गज की पेशकश करके, आख्यानों में विविधता लाने, और स्क्रीन पर जो संभव है उसकी सीमाओं को आगे बढ़ाते हुए, वे विश्व सिनेमा को अपनी सभी जटिलता में मानव अनुभव के अधिक समावेशी, प्रामाणिक और चिंतनशील बना रहे हैं।

मलोट पंजाब

घूँघट की बगावत

21 सितम्बर 2025

प्रत्येक रविवार को प्रकाशित
हिन्दी साप्ताहिक समाचार पत्र

मोदी सरकार: नारी शक्ति का उदयकाल

भारत की आधी आबादी, जिसे लंबे समय तक घर की चौखट और सामाजिक परंपराओं में सीमित माना जाता था, आज प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में नए आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ रही है। बीते दशक में तस्वीर पूरी तरह बदली है–ऐसे कानून बने जिन्होंने महिलाओं को बराबरी और गरिमा का अधिकार दिया, और ऐसी योजनाएँ आईं जिन्होंने मातृत्व को सुरक्षित कर बेटियों के सपनों को पंख दिए। यही वजह है कि आज नारी शक्ति केवल वोट नहीं, अब राष्ट्र की आवाज है । इसी यात्रा में 2023 का ह्यनारी शक्ति वंदन अधिनियमह्न स्त्री प्रतिनिधित्व को नई ऊँचाई देने वाली ऐतिहासिक उपलब्धि के रूप में अंकित हो गया है। इसके तहत लोकसभा और विधानसभाओं की एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित की गईं। यह बदलाव केवल आंकड़ों का नहीं बल्कि भारतीय लोकतंत्र की आत्मा में स्त्री शक्ति को प्रतिष्ठित करने का है।

मोदी सरकार ने महिलाओं की सुरक्षा और गरिमा सुनिश्चित करने के लिए 'मिशन शक्ति'की शुरूआत की। इसके अंतर्गत वन स्टॉप सेंटर, 247 महिला हेल्पलाइन और डिजिटल शिकायत पोर्टल जैसी सुविधाएँ उपलब्ध कराई गईं। हिंसा झेलने वाली महिलाएँ अब कानूनी, चिकित्सीय और मानसिक सहयोग एक ही स्थान पर पा रही हैं, और यह भरोसा जगा है कि उनकी आवाज अब अनसुनी नहीं होगी। मुस्लिम महिलाओं को अन्यायपूर्ण परंपरा से मुक्त करने वाला ह्यतीन तलाकह्न विरोधी कानून इसी दिशा में एक बड़ा परिवर्तन साबित हुआ। वहीं कामकाजी महिलाओं के लिए 'मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनियम, 2017' के अंतर्गत अवकाश 12 से बढ़ाकर 26 सप्ताह किया गया तथा बड़े संस्थानों में शिशु गृह (क्रेच) की सुविधा अनिवार्य की गई। इन पहलों ने महिलाओं को सुरक्षा और गरिमा के साथ कार्यक्षेत्र में सक्रिय योगदान का अवसर प्रदान किया।

मोदी सरकार की नीतियों में ह्यबेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओह्न नारी सशक्तिकरण का मर्मस्थ स्रोत रहा है, और हाल के आँकड़े इसकी गवाही देते हैं। 2014-15 में जहाँ 1000 लड़कों पर 918 लड़कियाँ थीं, 2023-24 में यह अनुपात बढ़कर 930 हुआ और माध्यमिक शिक्षा में लड़कियों की नामांकन दर 75.51% से बढ़कर 78% पहुँची। मार्च 2022 में ह्यकन्या शिक्षा प्रवेश उत्सवह्न से 1,00,786 बच्चियाँ स्कूल लौटीं। 2014-16 में मातृ मृत्यु दर 130 से घटकर 2018-20 में 97 रह गई और संस्थागत प्रसव 87% से बढ़कर 94% से अधिक हुआ–यह दर्शाता है कि सुरक्षित मातृत्व ही विकसित भारत की सच्ची पहचान है। राज्यों के अनुभव इस प्रगति को और भी सजीव बना देते हैं। उत्तर प्रदेश में गर्भवती महिलाओं में एनीमिया की दर 51% से घटकर 45.9% रह गई और गंभीर एनीमिया 2.1% से घटकर 1.7% पर आ गया–यह आँकड़े मातृ स्वास्थ्य सुधार की गवाही देते हैं। इसी कड़ी में उज्ज्वला योजना के अंतर्गत 10.33 करोड़ गैस कनेक्शन दिए गए, जिनमें से 8.34 करोड़ परिवार सक्रिय उपयोगकर्ता हैं, जिससे माताओं और बच्चों को धुएँ से मुक्ति मिली। वहीं स्वच्छ भारत मिशन के तहत बने करोड़ों शौचालयों ने ग्रामीण महिलाओं को खुले में शौच की विवशता से उबारकर उनकी गरिमा और स्वास्थ्य दोनों को संबल दिया। यह सब मिलकर नारी जीवन में सुरक्षा, सम्मान और स्वाभिमान की नई कहानी लिख रहे हैं।

आर्थिक स्वतंत्रता भी अब महिलाओं की शक्ति का दूसरा नाम बन चुकी है। मोदी सरकार के प्रयासों से 'स्टैंड अप इंडिया' और 'मुद्रा योजना' ने लाखों महिला उद्यमियों को कारोबार के लिए वित्तीय सहारा दिया, जबकि 'लाखपति दीदी' और 'ड्रोन दीदी' योजना ने ग्रामीण महिलाओं को तकनीक और स्वरोजगार से जोड़कर उन्हें स्वावलंबी भारत की नई पहचान बना दिया है। मुद्रा योजना में महिलाओं की हिस्सेदारी 68% है और 2016 से 2025 के बीच प्रति महिला औसत ऋण ₹62,679 तक पहुँचा। स्टैंड-अप इंडिया में 80% से अधिक ऋण महिलाओं को मिले। उत्तर प्रदेश में मनरेगा में उनकी भागीदारी 35% से बढ़कर 45.05% और श्रम-बल में 14% से बढ़कर 36% हुई। वाराणसी की 1.38 लाख ग्रामीण महिलाएँ स्व-सहायता समूहों से आत्मनिर्भर बनीं, जिनमें कई ड्रोन पायलटिंग, कृषि और डेयरी जैसे क्षेत्रों में सक्रिय हैं। यह दर्शाता है कि महिलाएँ अब केवल योजनाओं की भागीदार नहीं, बल्कि अर्थव्यवस्था की सशक्त धुरी बन रही हैं।

डिजिटल इंडिया ने महिलाओं के जीवन में ऐतिहासिक बदलाव लाया है। शहरी भारत की महिलाएँ स्मार्टफोन और इंटरनेट के सहारे बैंकिंग, ई-कॉमर्स और डिजिटल भुगतान को सहज बना रही हैं, तो ग्रामीण भारत की 76% महिलाएँ मोबाइल का उपयोग कर रही हैं और आधी से अधिक अपने निजी फोन की स्वामिनी बन चुकी हैं। यही तकनीकी पहुँच उन्हें डिजिटल विपणन, पैकेजिंग और ई-कॉमर्स से जोड़कर आत्मनिर्भरता की राह पर अग्रसर कर रही है। साथ ही, महिला हेल्पलाइन 181, एनसीडब्ल्यू 247 और पावर लाइन-1090 सुरक्षा और न्याय की त्वरित पहुँच देकर उनके आत्मविश्वास को और गहरा कर रही हैं। मोदी सरकार का यह डिजिटल सशक्तिकरण महिलाओं को समय और दूरी की सीमाओं से आजाद कर अवसरों की नई दुनिया थमा रहा है और उन्हें नवोन्मेषी बना रहा है।

प्रधानमंत्री मोदी के शासनकाल में महिलाओं ने राष्ट्रीय सुरक्षा की अग्रिम पंक्ति में नया इतिहास रचा। अग्निपथ योजना के तहत 153 महिला अग्निवीरों ने बेलगावी से प्रशिक्षण पूरा किया और नौसेना ने लगभग 20% पद महिलाओं के लिए खोले। जम्मू-कश्मीर के अखनूर सेक्टर में सात महिला बीएसएफ कर्मियों ने 72 घंटे तक मोर्चा सँभालकर साहस का अद्वितीय उदाहरण पेश किया। प्रधानमंत्री ने इस अभियान को हर माँ और बहन को समर्पित किया। साथ ही सेना का ह्यऑपरेशन सिंदूरह्न एक सांस्कृतिक प्रतीक बना–जहाँ राष्ट्र रक्षा के साथ महिलाओं के सम्मान और गरिमा की रक्षा का संदेश भी प्रतिध्वनित हुआ। सचमुच, अग्निवीर बेटियाँ अब सीमाओं पर देश की ढाल हैं और ह्यसिंदूरह्न वीरता का प्रतीक है।

बेशक चुनौतियाँ अब भी हैं और सामाजिक पूर्वाग्रह भी कायम हैं, पर अब नींव इतनी मजबूत है कि बदलाव अटल है। मोदी युग में महिलाओं की आवाज अब निर्णय और दिशा गढ़ती है; नारी केवल लाभार्थी नहीं, परिवर्तन की शिल्पकार और राष्ट्र निर्माण की धुरी बन चुकी है। यदि यही रफ्तार कायम रही, तो 2047 का विकसित भारत सचमुच नारी-निर्मित भारत होगा–जहाँ हर क्षेत्र में स्त्री शक्ति समानता, समृद्धि और नई संभावनाओं की मिसाल बनेगी।

डॉ. शिवानी कटारा

नरेन्द्र मोदी: सेवा प्रथम भाव से ओतप्रोत नेतृत्व

अंतरराष्ट्रीय, क्षेत्रीय और द्विपक्षीय तनावों के बीच प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के असाधारण नेतृत्व में भारत की विकास गाथा को देख पूरी दुनिया के रणनीतिकार न केवल आश्चर्यचकित हैं बल्कि आशावान भी है कि भविष्य में वैश्विक संकटों का समाधान भी भारत भूमि से ही प्रकट होगा। शांति काल, युद्ध काल या आपदा काल में समभाव बनाए रखते हुए जिस प्रकार से अब तक प्रधानमंत्री मोदी ने सटीक तथा लक्षित रणनीति के साथ समाधान प्रस्तुत किये हैं, उसने वैश्विक स्तर पर भरोसा और दृढ़ किया है।

नरेन्द्र मोदी के जीवन की कहानी संघर्ष और समर्पण की एक प्रेरणादायक गाथा है। वह एक ऐसे नेता हैं जिन्होंने अपने अद्वितीय नेतृत्व और विराट व्यक्तित्व से भारत को एक नई दिशा प्रदान की है। उनकी नेतृत्व क्षमता, दूरदर्शिता और जनसमर्थन ने उन्हें एक प्रभावशाली नेता बनाया है। वह एक मजबूत नेता हैं जो अपने निर्णयों पर अडिग रहते हैं और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कड़ी मेहनत करते हैं। उनकी नेतृत्व क्षमता ने उन्हें भारत और विश्व के सबसे प्रभावशाली नेताओं में से एक बनाया है। प्रधानमंत्री एक दूरदर्शी नेता हैं जो भारत के भविष्य को लेकर आशान्वित हैं। मेक इन इंडिया जैसी अनेक महत्वाकांक्षी परियोजनाओं की उन्होंने शुरूआत की है। जो भारत को एक विकसित राष्ट्र बनाने में मदद करेंगी। जनता से मिले व्यापक समर्थन, लोकप्रियता और उनके व्यक्तित्व के अद्भुत प्रभाव ने उन्हें एक दृढ़ निश्चयी नेता बनाया है जो कठोरतम निर्णयों को भी सहज भाव में लागू करने में सक्षम हैं। नरेन्द्र मोदी का विराट व्यक्तित्व उनकी नेतृत्व क्षमता, दूरदर्शिता और जनसमर्थन का परिणाम है। उन्होंने अपने जीवन में कई चुनौतियों का सामना किया है और उन्हें पार किया है, जो उनकी मजबूत इच्छाशक्ति और संकल्प को दर्शाता है।

नरेन्द्र मोदी जी का आरंभिक जीवन गुजरात के एक छोटे से शहर वडनगर में बीता। पिता दामोदर दास मूलचंद मोदी और माता हीराबेन के परिवार में 17 सितंबर 1950 को उनका जन्म हुआ। उनके परिवार की आर्थिक स्थिति सामान्य थी और पिता चाय की एक दुकान चलाते थे। अपनी स्कूली शिक्षा वडनगर में पूरी की और बाद में उन्होंने गुजरात विश्वविद्यालय से राजनीति विज्ञान में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। छात्र जीवन से ही वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) से जुड़ गए और उन्होंने संघ के साथ अपने राजनीतिक जीवन की शुरूआत की। नरेन्द्र मोदी जी का पूरा जीवन निस्वार्थ सेवा भाव में ही गुजरा है और आज भी विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के शीर्ष पद पर विराजमान होने के बावजूद उनका यह भाव जीवंत है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का भारतीय जनमानस पर प्रभाव बहुत गहरा और व्यापक है। उनकी लोकप्रियता और राजनीतिक कौशल कई मायनों में अद्वितीय हैं। वह एक प्रभावी वक्ता हैं जो अपने शब्दों से लोगों को प्रभावित करते हैं। वह एक कुशल राजनीतिक रणनीतिकार हैं । जनता के व्यापक समर्थन से प्रधानमंत्री ने भारत में आर्थिक सुधार के लिए कई साहसिक कदम उठाए हैं जिनमें जीएसटी और नोटबंदी प्रमुख है। इन आर्थिक सुधारों ने देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में मदद की है। जनता में उनके समर्थन और उनके प्रति अनुसरण के भाव को स्वच्छ भारत अभियान और बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ जैसे अभियानों में देखा जा सकता है जिन पर पूरे देश में उन्हें जनसमर्थन प्राप्त हुआ है ह्यमन की बातह्न में गाँव के किसी साधारण श्रमिक की कहानी या कोविड-19 में फ्रंटलाइन वर्कर्स का अभिनंदन कर उन्होंने यह दिखाया कि हर योगदान मायने रखता है। कोविड-19 महामारी के कठिन समय में नरेंद्र मोदी की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उन्होंने केवल प्रशासनिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि भारतीय मन की गहराई को समझते हुए जनता का मनोबल बनाए रखा। जब भय और असुरक्षा का वातावरण था, तब उन्होंने सरल प्रतीकों और सांस्कृतिक जुड़ावों के माध्यम से लोगों में सामूहिक ऊर्जा जगाई। थाली और ताली बजाने का आह्वान इस बात का उदाहरण था कि उन्होंने भारतीय समाज की उस प्रवृत्ति को पहचाना जहाँ किसी उत्सव या चुनौती में ध्वनि और प्रतीकात्मक कर्मकांड से एकता और संकल्प का संदेश मिलता है। यह ठीक वैसा ही था जैसा महात्मा गांधी ने चरखे को स्वदेशी आंदोलन का प्रतीक बनाया था–साधारण कर्म से गहरा संदेश। ह्लवोकल फॉर लोकलह्न जैसी पहल, हस्तशिल्प को वैश्विक मंच पर ले जाना और राज्य स्तरीय अनेक पहल को केंद्र की योजनाओं से जोड़ना इस सोच का उदाहरण हैं।

विश्व में वह एक मजबूत नेता के तौर पर उभरे हैं। राष्ट्र के हितों को सर्वोपरि मानते हुए उन्होंने जिस तरह के अमेरिकी टैरिफ मसले पर रणनीति अपनाई है उसने पूरे विश्व को दिखा दिया है कि भारत राष्ट्र हितों पर किसी के आगे झुकने को तैयार नहीं है। विभिन्न देशों के बीच सामंजस्य बनाने का प्रधानमंत्री के पास एक अद्वितीय कौशल है। पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने भी उनकी कार्यशैली की सराहना करते हुए कहा था कि उन्हें लगता है कि मोदी 24 घंटे देश के लिए काम करते हैं। यह कथन उनकी असाधारण कार्यक्षमता और समर्पण को दर्शाता है। उनकी विदेश

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का भारतीय जनमानस पर प्रभाव बहुत गहरा और व्यापक है। उनकी लोकप्रियता और राजनीतिक कौशल कई मायनों में अद्वितीय हैं। वह एक प्रभावी वक्ता हैं जो अपने शब्दों से लोगों को प्रभावित करते हैं। वह एक कुशल राजनीतिक रणनीतिकार हैं । जनता के व्यापक समर्थन से प्रधानमंत्री ने भारत में आर्थिक सुधार के लिए कई साहसिक कदम उठाए हैं जिनमें जीएसटी और नोटबंदी प्रमुख है।

नीति और कूटनीतिक प्रयासों ने भारत को वैश्विक मंच पर एक महत्वपूर्ण भूमिका दिलाई है। उन्होंने ग्लोबल साउथ के देशों के साथ संबंधों को मजबूत बनाने पर ध्यान केंद्रित किया है। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र और जी- 20 जैसे वैश्विक मंचों पर भारत की आवाज को बुलंद किया है। उन्होंने आर्थिक कूटनीति पर ध्यान केंद्रित किया है, जिससे देश के व्यापार और निवेश में वृद्धि हुई है।

उन्होंने सांस्कृतिक कूटनीति का उपयोग करके विभिन्न देशों के साथ संबंधों को मजबूत बनाने का प्रयास किया है। इसके अंतर्गत योग और आयुर्वेद को वैश्विक स्तर पर बढ़ावा दिया गया है।

उम्र के सातवें दशक में होने के बावजूद वह टेक्नोलॉजी के मामले में आज के युवा की बराबरी करते हैं। नवाचारों पर उनका भरोसा है और उसे प्रोत्साहित करते हैं। यही वजह है कि एक दशक के उनके कार्यकाल में भारत विश्व में सबसे अधिक स्टार्ट अप्स वाला देश बन गया है। संभवतः वह विश्व के एकमात्र नेता हैं जो सीधे जनता से संवाद करने में विश्वास रखते हैं। आकाशवाणी पर उनके मासिक कार्यक्रम 'मन की बात' और विद्यार्थियों के साथ 'परीक्षा पे चर्चा' इसका सफल उदाहरण हैं। इन दोनों कार्यक्रमों का जनमानस पर व्यापक स्तर पर प्रभाव पड़ा है। खेलों को बढ़ावा देने के लिए 'खेलो इंडिया' और महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए 'ड्रोन दीदी' जैसी पहल जमीनी स्तर पर बदलाव लाने की इच्छा को दर्शाती हैं। इसके अतिरिक्त, 'नमो ऐप' के माध्यम से जनता को सीधे प्रधानमंत्री से जोड़ने और भारतीय डायस्पोरा को देश के विकास का हिस्सा बनाकर उन्होंने भारत की सॉफ्ट पावर को वैश्विक स्तर पर मजबूत किया है।

गोस्वामी तुलसीदासजी रामचरित मानस में राजा जनक के चरित्र का वर्णन करते हुए कहते हैं ₹अतुलित धन्य सिय राम के जाई। राजसभा बिनु सवद सुहाई। अर्थात राजा जनक राजा होते हुए भी एक संन्यासी की तरह जीवन जीते थे, और सांसारिक सुख-सुविधाओं की बजाय ज्ञान और वैराग्य को महत्व देते थे। लेक्स फ्रिडमैन के साथ पॉडकास्ट में कठोर परिश्रम के सम्बन्ध में प्रश्न पूछने पर प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने कहा, ₹संतोष हमेशा देने के भाव की कोख से पैदा होता है।₹ प्रधानमंत्री श्री मोदी इसी कर्मयोगी भाव के जीते जागते उदाहरण हैं। गुजरात का मुख्यमंत्री होने के समय से ही वह एक अनुशासित और सरल जीवन जीने के लिए जाने जाते हैं। प्रधानमंत्री बनने के बाद भी श्री नरेन्द्र मोदी का जीवन अनुशासित और सरल रहा है। वह नियमित रूप से योग और ध्यान करते हैं और एक स्वस्थ जीवनशैली को अपनाते हैं। वह आध्यात्मिकता में विश्वास करते हैं। वह स्वामी विवेकानंद और महात्मा गांधी जैसे आध्यात्मिक नेताओं से प्रेरणा लेते हैं। उनका संन्यासी भाव उनके जीवन और कार्य में देखा जा सकता है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी भारतीय संस्कृति के अनन्य पुजारी हैं। वह भारतीय संस्कृति की समृद्धि और विविधता को बढ़ावा देने के लिए काम करते हैं। वह अक्सर अपने भाषणों में भारतीय संस्कृति की महानता का उल्लेख करते हैं। वह कला भी को बढ़ावा देते हैं और कलाकारों और संस्कृतिकर्मियों को प्रोत्साहित करते हैं। समय झ समय पर वाद्य यंत्रों का वादन जैसे असम का सारिंदा, महाराष्ट्र में बंजारा संस्कृति से जुड़ा ढोल जैसा वाद्य यंत्र नांगरा, आदिवासी कलाकारों के साथ पारंपरिक वाद्य यंत्र और उत्तराखंड के स्थानीय कलाकारों के साथ एक पारंपरिक वाद्य यंत्र उनकी संगीत के प्रति अभिरुचि को प्रकट करता है।

नरेन्द्र मोदी में एक साहित्यकार एवं कवि होने के करण उनकी संवेदनशीलता प्रकट होती हैं। उन्होंने कई पुस्तकें और कविताएं लिखी हैं जो उनके विचारों और अनुभवों को दर्शाती हैं 2007 में नरेंद्र मोदी ने अपनी कविता-संग्रह की पुस्तक ह्यआंख आ धन्य छेह्न का विमोचन मुंबई में किया। इस अवसर पर उन्होंने शेखावत जी को मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया।

कार्यक्रम में शेखावत जी ने कहा- ह्नजब मोदी ने मुझे पुस्तक विमोचन के लिए कहा, तो मुझे लगा वे मजाक कर रहे हैं। मैं विश्वास नहीं कर सका कि वे कविता भी लिखते हैं। मुझे खेद है, मोदी जी, मैंने सोचा नहीं था कि आपके भीतर इतना कोमल पक्ष भी है। आज मैं देख रहा हूँ कि आपका व्यक्तित्व कठोरता और कोमलता का अद्भुत संगम है ह्न ज्योतिपुंज पर परम पूजनीय मोहन भागवत जी का कहना कि ह्न यह पुस्तक नहीं है, अनुभूति हैह्न ज्योति पथ कविता संग्रह एवं ₹सेट ऑफ एक्जाम वारियर्स₹ परीक्षा सम्बन्धी उनकी पुस्तक सभी के लिए प्रेरनादायी है।

- शिवप्रकाश

प्रधानसेवक नरेन्द्र मोदी: एक युगपुरुष का 75वां पड़ाव

17 सितंबर, 1950 को गुजरात के वडनगर में एक साधारण परिवार में जन्मे मोदी का बचपन अभावों में बीता। चाय बेचने वाले परिवार से ताल्लुक रखने वाले इस बालक ने अपनी मेहनत, लगन और देशभक्ति के बल पर विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के सर्वोच्च पद तक का सफर तय किया। यह यात्रा केवल व्यक्तिगत सफलता की कहानी नहीं, बल्कि उस भारत की कहानी है, जो हर नागरिक को अपने सपनों को साकार करने का अवसर देता है।

भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश का नेतृत्व करना कोई साधारण कार्य नहीं। यह एक ऐसी जिम्मेदारी है, जिसमें दूरदृष्टि, समर्पण और जनता के प्रति अटूट विश्वास की आवश्यकता होती है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र दामोदरदास मोदी ने इस दायित्व को न केवल स्वीकार किया, बल्कि इसे एक मिशन के रूप में अपनाकर देश को नई ऊंचाइयों तक पहुंचाया। 17 सितंबर, 2025 को वह अपने जीवन के 75वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। यह अवसर न केवल उनके व्यक्तिगत जीवन का उत्सव है, बल्कि उनके अभूतपूर्व योगदान को स्मरण करने का भी एक सुअवसर है। नरेन्द्र मोदी ने स्वयं को ह्यप्रधानमंत्रीह्न से अधिक ह्नप्रधानसेवकह्न के रूप में स्थापित किया, जो जनता की सेवा को सर्वोच्च कर्तव्य मानते हैं।

साधारण शुरूआत से असाधारण उपलब्धियां

नरेन्द्र मोदी का जीवन प्रेरणा का जीवंत दस्तावेज है। 17 सितंबर, 1950 को गुजरात के वडनगर में एक साधारण परिवार में जन्मे मोदी का बचपन अभावों में बीता। चाय बेचने वाले परिवार से ताल्लुक रखने वाले इस बालक ने अपनी मेहनत, लगन और देशभक्ति के बल पर विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के सर्वोच्च पद तक का सफर तय किया। यह यात्रा केवल व्यक्तिगत सफलता की कहानी नहीं, बल्कि उस भारत की कहानी है, जो हर नागरिक को अपने सपनों को साकार करने का अवसर देता है।

युवावस्था में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएस-एस) से जुड़कर उन्होंने राष्ट्रसेवा का मार्ग चुना। आरएसएस में प्रचारक के रूप में उनके अनुभवों ने उन्हें संगठनात्मक कौशल, अनुशासन और समाज के प्रति संवेदनशीलता प्रदान की। देश के विभिन्न हिस्सों की यात्रा के दौरान उन्होंने समाज के अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति की पीड़ा को समझा। यही अनुभव उनके नेतृत्व का आधार बना, जो उनकी नीतियों और निर्णयों में स्पष्ट रूप से झलकता है।

गुजरात मॉडल: विकास का प्रतीक

2001 में जब नरेन्द्र मोदी ने गुजरात के मुख्यमंत्री का दायित्व संभाला, तब राज्य भूकंप की त्रासदी से जूझ रहा था। उनके नेतृत्व में गुजरात ने न केवल पुनर्निर्माण की राह पकड़ी, बल्कि विकास के नए आयाम स्थापित किए। निवेश, उद्योग, बुनियादी ढांचा और सामाजिक कल्याण योजनाओं के माध्यम से उन्होंने गुजरात को समृद्ध और प्रगतिशील बनाया। ह्नवाइब्रेंट गुजरातह्न जैसे आयोजनों ने विश्व स्तर पर ध्यान आकर्षित किया। गुजरात मॉडल उनकी दूरदर्शिता और प्रशासनिक क्षमता का परिणाम था, जिसे आज भी विकास का मानक माना जाता है।

चुनौतियों को अवसर में बदलना

2014 में जब नरेन्द्र मोदी भारत के प्रधानमंत्री बने, तब देश आर्थिक सुस्ती, भ्रष्टाचार और नीतिगत जड़ता से जूझ रहा था। लेकिन उन्होंने इन चुनौतियों को अवसर में बदला। ह्नसबका साथ, सबका विकासह्न का नारा उनकी सरकार की कार्यप्रणाली का मूलमंत्र बन गया। डिजिटल इंडिया, स्वच्छ भारत अभियान और जन-धन योजना जैसे कदमों ने देश के आम नागरिक को केंद्र में रखा। डिजिटल इंडिया ने तकनीकी क्रांति को गति दी, तो स्वच्छ भारत ने स्वच्छता को जन-आंदोलन बनाया। जन-धन योजना के तहत करोड़ों लोग बैंकिंग व्यवस्था से जुड़े, जिसने वित्तीय समावेशन को नया आयाम दिया।

नरेन्द्र मोदी की सबसे बड़ी खासियत उनकी जनता से सीधे संवाद करने की क्षमता है। ह्नमन की बातह्न के जरिए वह देशवासियों से अपने विचार साझा करते हैं और उनकी आकांक्षाओं को सुनते हैं। यह कार्यक्रम सामाजिक जागरूकता और सकारात्मक बदलाव का जरिया बन गया। बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ और पर्यावरण संरक्षण जैसे मुद्दों पर उनकी अपील ने जनता को प्रेरित किया।

वैश्विक मंच पर भारत की बुलंद आवाज

नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भारत ने वैश्विक मंच पर अपनी स्थिति को अभूतपूर्व रूप से मजबूत किया। उनकी विदेश नीति ने भारत को विश्वसनीय और शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में स्थापित किया। संयुक्त राष्ट्र में भारत की स्थायी सदस्यता की मांग हो या जी-20 जैसे मंचों पर प्रभावी उपस्थिति, उन्होंने भारत की आवाज को बुलंद किया। ह्नबेरहुड फर्स्टह्न और ह्नएक्ट ईस्टह्न नीतियों ने पड़ोसियों और एशियाई देशों के साथ संबंधों को नई गति दी। अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन जैसे पहल ने जलवायु परिवर्तन के प्रति भारत की प्रतिबद्धता को रेखांकित किया।

आर्थिक सुधार और आत्मनिर्भर भारत

आर्थिक सुधारों के क्षेत्र में भी नरेन्द्र मोदी का योगदान उल्लेखनीय है। जीएसटी जैसे ऐतिहासिक सुधार ने भारत की अर्थव्यवस्था को एकीकृत किया। मेक इन इंडिया, स्टार्टअप इंडिया और आत्मनिर्भर भारत जैसे अभियानों ने उद्यमिता को बढ़ावा दिया और भारत को वैश्विक विनिर्माण का केंद्र बनाने की दिशा में कदम बढ़ाए। कोविड-19 महामारी के दौरान जब पूरी दुनिया संकट में थी, तब भारत उनकी अगुवाई में न केवल अपनी अर्थव्यवस्था को संभाला, बल्कि ह्नवैक्सीन मैत्रीह्न के तहत कई देशों को दवाइयां और वैक्सीन प्रदान कर मानवता की सेवा की।

सामाजिक समावेशन और अंत्योदय

नरेन्द्र मोदी का नेतृत्व केवल नीतियों तक सीमित नहीं। उनकी सरकार ने समाज के हर वर्ग को जोड़ने का प्रयास किया। उज्ज्वला योजना ने गरीब महिलाओं को मुफ्त गैस कनेक्शन, आयुष्मान भारत ने स्वास्थ्य बीमा और पीएम-किसान ने किसानों को आर्थिक सहायता प्रदान की। अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़े वर्ग और महिलाओं के उत्थान के लिए उनकी योजनाएं अंत्योदय की भावना को दर्शाती हैं।

प्रेरणा का स्रोत

75वें जन्मदिन पर नरेन्द्र मोदी का जीवन हमें सिखाता है कि सच्चा नेतृत्व वही है, जो जनता के कल्याण को सर्वोपरि माने। वह न केवल एक राजनेता, बल्कि एक विचारक, प्रेरक और कर्मयोगी हैं। उनकी सादगी, अनुशासन और कार्य के प्रति समर्पण युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणा का स्रोत है। योग को वैश्विक पहचान दिलाने से लेकर भारत की सांस्कृतिक विरासत को विश्व मंच पर ले जाने तक, उन्होंने हर क्षेत्र में अपनी छाप छोड़ी। नरेन्द्र मोदी का 75वां जन्मदिन केवल एक व्यक्ति का उत्सव नहीं, बल्कि उस भारत का उत्सव है, जो उनके नेतृत्व में आत्मविश्वास और प्रगति के पथ पर अग्रसर है। उनकी यात्रा अभी जारी है, और उनका विजन भारत को नई ऊंचाइयों तक ले जाएगा। एक प्रधानसेवक के रूप में उनका जीवन इस बात का प्रमाण है कि सच्ची सेवा ही सबसे बड़ा नेतृत्व है। इस अवसर पर हम उनके दीर्घायु और स्वस्थ जीवन की कामना करते हैं, ताकि वह भारत की सेवा में और भी कई वर्षों तक अपना योगदान दे सकें।

आशीष कुमार 'अंशु'

स्वामी/मुद्रक/प्रकाशक पंकज धर द्विवेदी द्वारा जनप्रकाशन प्रेस निकट रीड्स साहब का धर्मशाला से मुद्रित एवं 45, बादशाह बाग, जगन्नाथपुर, गोरखपुर से प्रकाशित।

संपादक: पंकज धर द्विवेदी

संपर्क सूत्र : ghoonghatkibagawat37@gmail.com